UNIVERSAL LIBRARY

OU_180144

UNIVERSAL LIBRARY

राजघाट की संनिधि में

•

विनोबा-प्रवचन

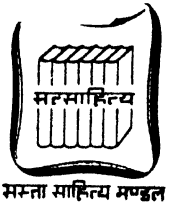

सप्तसाहित्य मण्डल

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 923.654 V78 R Accession No. G.H.2743

Author विनोबा

Title राजघाट की सन्निधि में १९५५

This book should be returned on or before the date last marked below.

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय, मंत्री
सस्ता साहित्य मण्डल
नई दिल्ली ।

दूसरी बार : १९५५
मूल्य
पिचहत्तर नये पैसे

मुद्रक
नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स,
दिल्ली ।

प्रकाशकीय

भूदान-यज्ञ के सिलसिले में पैदल-यात्रा करते हुए विनोबाजी १३ नवम्बर को दिल्ली आये थे और २३ नवम्बर तक राजधानी में रहे। इन ग्यारह दिनों में प्रार्थना के बाद प्रतिदिन उन्होंने जो प्रवचन किये थे, उन्हीं का संग्रह इस पुस्तक में किया गया है। १८ नवम्बर का प्रवचन उन्होंने किशनगंज, दिल्ली की मजदूर-बस्ती में किया था। शेष सब राजघाट के हैं।

विनोबाजी जितने दिन दिल्ली रहे, प्रायः हर रोज एक सम्मेलन भी हुआ करता था। इन सम्मेलनों में बहुत ही महत्वपूर्ण चर्चाएं हुई। विनोबाजी ने आज की अनेक ज्वलंत समस्याओं पर प्रकाश डाला और लोगों की शंकाओं का समाधान किया। विचार था कि इन चर्चाओं को भी इस संग्रह में शामिल कर लिया जाय; लेकिन उनमें से हमें केवल तीन ही प्राप्त हो सकीं—दो संवाददाता-सम्मेलनों की और तीसरी कांग्रेस-कार्यकर्त्ता सम्मेलन की।

पुस्तक की पूरी सामग्री विनोबाजी के निजी सचिव श्री दामोदरदास जी मूंदड़ा ने अत्यन्त व्यस्त होते हुए भी बड़े परिश्रम और सावधानी से देखी है। तदर्थ हम उनके आभारी हैं।

दूसरा संस्करण

भूदान-यज्ञ का क्षेत्र और प्रभाव अब काफी व्यापक हो गया है। इस संग्रह के भाषणों में उस संबंध में बुनियादी विचार दिये गए हैं, जो आज भी ताजे और उपयोगी हैं। पुस्तक का दूसरा संस्करण पाठकों के सामने रखते हुए हम आशा करते हैं कि वे इसे अधिक-से-अधिक पाठकों तक पहुंचाने में हमारी सहायता करेंगे।

—मंत्री

प्रस्तावना

प्लानिंग कमीशन की जो योजना प्रकट हुई थी, उसके कुछ अंशों पर मैंने मेरा तीव्र असन्तोष जाहिर किया था। इस पर पं० जवाहरलालजी ने आज्ञा दी कि मैं दिल्ली आकर उन लोगों के सामने मेरे विचार तफसील-वार रखूं, जिससे विचार-विनिमय आसान हो सके। मैंने वह आज्ञा मान ली और वर्धा से दिल्ली के लिए बारह सितम्बर को, जो कि मेरे नये वर्ष का नया दिन था, मैं निकल पड़ा। मैं बुलाया गया था तुरन्त, लेकिन पहुंचा दो महीने के बाद, क्योंकि, "चरैवेति, चरैवेति" इस आदेश के अनुसार मैंने पैदल-यात्रा की। और भूदान-यज्ञ, जिसका पहला अध्याय तेलंगाना में समाप्त हुआ था, का दूसरा अध्याय शुरू कर दिया। लोगों ने श्रद्धा और प्रेम से यथाशक्ति आहुतियां दीं और अठारह हज़ार एकड़ भूमि, भूमिहीनों के लिए मिल गई। उतनी ही मुद्दत में तेलंगाना से बारह हज़ार एकड़ की आहुति मिली थी। बलिदान देने वाले बलि की महिमा ही वामन को विराट बनाती है।

दिल्ली तेरह नवम्बर को पहुंचना हुआ। लोगों ने राजघाट की संनिधि में मेरे लिए निवास बना रखा था। वहां मुझे बहुत शांति और स्फूर्ति मिली। प्लानिंग कमीशन के साथ चर्चा भी वहीं हुई। चर्चा सद्भावना के साथ हुई। मेरे सारे विचार जो मैंने बहुत स्पष्टता से रखे सब मित्रों ने ध्यानपूर्वक सुने। मुझे आशा करने के लिए कारण है कि उस चर्चा के प्रकाश में योजना में यथासंभव परिवर्तन किया जायगा।

चर्चा तो वैसे तीन दिन हुई; लेकिन उसको पचाने में पांच-सात दिन और गये। मैंने ग्यारह दिन रहने का पहले से ही कार्यक्रम रखा था; उतने दिनों की आवश्यकता भी थी। मैं जिस दिन दिल्ली पहुंचा वह बाबा नानक का पुण्य-दिन था। दूसरे दिन हम प्लानिंग की चर्चा के लिए बैठे तो वह

जवाहरलालजी का जन्म दिन था और उसी दिन कई महीनों के बाद मेरा उनसे मिलना हुआ । बापू की समाधि की पावन-संनिधि में, और ऐसे पुण्य समागम में, वहां की मेरी उपासना मेरे लिए चिरस्मरणीय हो गई।

सुबह की प्रार्थना, जो ठीक चार बजे शुरू होती थी, साधक सज्जनों की संगति में होती थी। उसमें तुलसीदास की 'विनय पत्रिका' के अमृत-मधुर भजनों का मैं प्रकट चिन्तन करता था। उससे दिनभर के कार्यक्रम में, जो खचाखच भरा हुआ था, बिना विश्राम का समय लिये ही मुझे विश्राम मिल जाता था। और शाम को राजघाट की पद्धति के अनुसार जाहिर प्रार्थना होती थी। प्रार्थना के अन्त में हर रोज जैसे-जैसे विचार सूझते थे, थोड़ी देर में कह देता था। उसमें भूदान-यज्ञ के विषय में भी कुछ खुलासा हुआ है और कुछ सर्वोदय-विचार का भी, आज की परिस्थिति को ध्यान में रखकर विवरण किया गया है। उसका संग्रह 'सस्ता-साहित्य मंडल' वालों ने इस पुस्तक में किया है। क्योंकि दिल्ली में रहने की अवधि मैंने पहले से निश्चित की थी, इसलिए विचार-कथन में कुछ संगति और योजना सहज आ गई है। इसलिए इस संग्रह में अपनी एक पूर्णता है।

सर्वोदय-विचार में माननेवाले और उसपर अमल करने की इच्छा रखनेवाले पाठकगण इसके अधिकारी हैं। सर्वोदय-विचार हृदयंगम हो, यह इसका प्रयोजन है—और भूमिहीनों के लिए भूरि-भूरि भूमिदान मिले यह इसकी मेरी अपेक्षित फलश्रुति है ।

पड़ाव : स्वार,
जिला : रामपुर (उत्तर प्रदेश)
२८.१२.१९५१.

विषय-सूची

प्रस्तावना	प्रारम्भ में
१. राजघाट पर	७
२. भिक्षा नहीं, दीक्षा	८
३. शक्ति का अधिष्ठान	१३
४. लोकयात्रिक सरकार	१८
५. सर्वोदय का पंचविध कार्यक्रम	२३
६. मालिक-मजदूर : एक तस्वीर	२६
७. कांचन-मोह-मुक्ति	३३
८. खादी का विचार	३९
९. भूदान की मर्यादा	४४
१०. अहिंसक कानून	४८
११. राजधानी से अपेक्षा	५३
परिशिष्ट	
(१) भूमि-समस्या का शांति-पूर्ण हल	५६
(२) कांग्रेस की शुद्धि	५८
(३) विविध शंकाएं और उनका समाधान	६५

राजघाट की संनिधि में

: १ :

राजघाट पर

शंकराचार्य ने लिखा है कि पुत्र तो कुपुत्र हो सकता है, लेकिन माता कुमाता नहीं हो सकती।

जब महात्माजी जीवित थे तब वे हमारी कितनी ही गलतियां सुधार देते थे और क्षमा कर देते थे; लेकिन मैं तो यह अनुभव कर रहा हूं कि अब जब कि वह देह में नहीं हैं, मुझे निरन्तर बचा लेते हैं।

अब उनकी अलग हस्ती मिट गई है और भगवान की ज्योति में विलीन हो गये हैं। जिस रामनाम का वह केवल वाणी से ही नहीं, बल्कि मन से, जीवन से रटन करते थे और जिसका स्मरण करते ही वे अपना शरीर छोड़ गये, उस रामनाम में उनका नाम लीन हो गया है। लोग आज भी गांधीजी की जय बोलते हैं तो मैं उन दो शब्दों से रामजी की ही जय समझ लेता हूं। जहां भक्त और भगवान दोनों मिल कर एक ही ज्योति बन जाती है, वहां हमारा सब तरह से रक्षण होता है।

परमेश्वर की हस्ती हर जगह है। मैं भी उसे हर जगह महसूस करता हूं और हर चेहरे में देखने की कोशिश करता हूं। पर बावजूद इसके, कुछ स्थानों की महिमा अमिट रहती है। मुझे विश्वास है कि यह स्थान जो राजघाट कहलाता है, हमारे राज्यों के लिए निरन्तर मार्गदर्शन करता रहेगा। जो काम मैंने इस समय उठा लिया है और जिसमें मुझे सहयोग भी मिल रहा है, वह सब

उनकी ही प्रेरणा है। इस काम में जो गलतियां होती हैं वे मेरी हैं और जो अच्छाइयां प्रकट होती हैं, वे उनकी हैं।

अब इस मौके पर मैं अधिक नहीं बोल सकता। गरीबों के लिए हम सबको अपना जीवन देना है। मैं जो जमीन मांग रहा हूं वह तो एक बाहर की निशानी है, लेकिन हम अपने हृदय में दरिद्रनारायण की मूर्ति स्थिर करेंगे। ऐसी प्रतिज्ञा भू-दान-यज्ञ में निहित है।

अब जब मैं दिल्ली आ पहुंचा हूं, जहां हिन्दुस्तान की राजधानी है और जहां इस महापुरुष की समाधि है, वहां सब लोग मुझे दिल खोल कर जमीन दान देंगे और दरिद्रनारायण की झोली प्रेम से भर देंगे, ऐसी मेरी आशा है। अभी तो आप सबको भक्ति-भाव से प्रणाम करके समाप्त करता हूं।

राजघाट, १३ नवम्बर १९५१

: २ :

भिक्षा नहीं, दीक्षा

आज कार्तिक पूर्णिमा का दिन है और महात्मा नानक का भी जन्म-दिन है। तो जिस काम को मैंने परमेश्वर के भरोसे उठा लिया है, उसके लिए दुनिया के सब सत्पुरुषों का आशीर्वाद है, ऐसा मैंने निश्चयपूर्वक मान लिया है। इस तरह आज जब नानक के जन्म-दिन पर मैं यहां आ पहुंचा—वैसी कोई योजना तो पहले से थी नहीं—तो नानक का भी आशीर्वाद विशेष रूप से मैंने पा लिया।

व्यक्तिगत सत्याग्रह के सिलसिले में मैं जब पहली बार जेल पहुंचा था तब अनेक भाषाओं और धर्मग्रन्थों का अध्ययन करने का मौका मुझे मिला था। उसके बाद बाहर भी मेरा वह अध्ययन जारी रहा। तीव्र अध्ययन के लिए जितना समय मिलना चाहिए था, मुझे मिला और पहली बार शिरोमणि गुरुद्वारा सभा की कृपा

से नागरी लिपि में मुद्रित ग्रन्थसाहब की प्रतिलिपि मुझे मिल गई। शुरू से आखीर तक मैं उस ग्रन्थ को देख गया। उसके बाद महीनों सिक्खों की उपासना का अध्ययन और उसका अनुभव प्राप्त करने के लिए रोज सुबह की प्रार्थना में जपुजी का पाठ करता रहा। उसके बाद नामदेव के भजनों का मुझे संग्रह करना था। नामदेव के भजन प्रायः सभी मराठी में हैं, परन्तु उनके कुछ भजन हिन्दुस्तानी में भी हैं। उन्हें देखने और उनमें से चुनाव करने की दृष्टि से मैं पुनः एक बार ग्रन्थसाहब को देख गया। इस तरह नानक के साथ मेरा हृदय का परिचय हो गया और आज उनके जन्म-दिवस पर यहां आ पहुंचा तो मैं यह बहुत शुभ शकुन मानता हूं।

मैं यहां किस काम के लिए आया हूं, यह आप जानते हैं। जब दिल्ली वालों की ओर से एक संदेश की मांग की गई तो एक छोटा-सा संदेश मैंने दिल्ली वालों के लिए लिख दिया था। उसमें मैंने कहा है कि "मैं भिक्षा मांगने नहीं आ रहा हूं, हक मांगने आ रहा हूं, दीक्षा देने आ रहा हूं।"

यह जो मैंने 'भिक्षा' और 'हक' का फर्क बताया है, वह बहुत महत्व का है। अगर मैं किसी आश्रम या मठ या मंदिर के वास्ते जमीन इकट्ठा करने आया होता, जैसा कि पहले कई लोगों ने किया है, तो दूसरी बात होती। लेकिन यह तो हमारा यज्ञ हो रहा है, और किसी छोटे काम के लिए नहीं, बल्कि हिन्दुस्तान के दरिद्रनारायण की ओर से मैं मांग कर रहा हूं। इसमें भिक्षा का कोई सवाल ही नहीं है। सिर्फ जमीन इकट्ठा करने का यह काम नहीं है, बल्कि एक विचार को फैलाने का, एक नये तरीके को आजमाने का उद्देश्य इसमें है। मैं इस बात की तलाश में हूं कि जो बड़े भारी मसले हमारे सामने हैं, उनमें से किसी एक मसले का भी हल हम अहिंसक तरीके से निकाल सकें, जो तरीका हमें गांधीजी ने सिखाया है और जो हिन्दुस्तान की सभ्यता के अनुकूल है।

गांधीजी के जाने के बाद मैं यहां भी आ पहुंचा था और

शरणार्थियों के बीच कुछ काम करने का भी सोचा था। काम कुछ हुआ भी, लेकिन मुझे वह चीज नहीं मिली, जिसकी तलाश में मैं था, क्योंकि वह सारा काम सरकार के अधिकारियों से सम्बन्ध रख कर करना था। इसलिए उसकी अपनी मर्यादाएं थीं। थोड़े ही दिनों में मैंने देख लिया कि मुझे और ही कोई रास्ता ढूंढना चाहिए। इसी बीच मेव लोगों में काम करने का मौका मिला। उसमें भी अधिकारियों के साथ सम्बन्ध रखने का सवाल था, परन्तु काम मर्यादित था और उस समय उस काम की ओर किसी का भी ध्यान नहीं था, बल्कि उसके बारे में एक नफरत-सी थी। परमेश्वर की कृपा से आज वह नफरत नहीं है। तो मुझे लगा कि उस काम से अहिंसा की शक्ति कुछ प्रकट हो सकती है। आज भी मेवों में काम हो रहा है। हमारे लोग वहां काम में लगे हुए हैं। जो सुझाव मैंने दिये थे, सरकार की ओर से उन पर पूरी तरह अमल नहीं हुआ। उन्होंने उसमें से कुछ हिस्सा माना, कुछ हिस्से पर अमल किया। फिर भी वहां काफी काम हुआ है ऐसा कहना चाहिए और नतीजा यह हुआ है कि जब मैं मुसलमानों में पहुंचता हूं तो वे मानते हैं कि यह शख्स किसी तरह का भेदभाव नहीं रखता। इसका अनुभव मुझे अजमेर की दरगाहशरीफ में हुआ। वहां हर मुसलमान ने मेरा सत्कार किया और जैसा कि उनके यहां रिवाज है, हरेक ने मेरे हाथ को चूम कर अपना प्रेम प्रकट किया। फिर उसका परिणाम मैंने हैदराबाद में देखा। वहां हिंदू लोग तो थे ही और मैं तो उनके ही धर्म में पला हुआ हूं, उनके विश्वास का पात्र तो था ही, मुसलमान भाइयों ने भी मुझमें पूरा विश्वास व्यक्त किया।

फिर भी मैं ढूंढ़ने लगा कि कोई ऐसा तरीका हाथ आना चाहिए कि जिसे अहिंसात्मक क्रांति का—सर्वोदय का—क्रियात्मक आरंभ कहा जा सके। मैंने समझ लिया था कि अगर यह होता है तो खादी, ग्रामोद्योग आदि का भी काम आगे बढ़ता है, नहीं तो न कोई खादी को पूछने वाला है, न ग्रामोद्योगों को।

इसलिए जब तेलंगाना की यात्रा का मौका आया तो उसमें कुछ शोधन हुआ और एक चीज हाथ में आ गई। तब से मैं उसके पीछे लगा हूं। और मुझे एक जीवन-कार्य सा मिल गया है। मैंने समझ लिया है कि इतना काम करते-करते अगर मैं खत्म हो जाऊं तो भी मेरी जिन्दगी का साफल्य है। मानों मेरे हाथ में एक रत्न-चिंतामणि ही आ गया, जिसकी कि मैं तलाश में था।

तो यह जमीन का मसला सारी दुनिया का मसला है और जिसे हल करने में और मुल्कों ने दूसरे तरीके अख्तियार किये हैं, हम उसे अहिंसक तरीके से हल करना चाहते हैं। इसलिए अगर आप थोड़ी-थोड़ी जमीन देंगे तो उससे गरीबों को थोड़ी जमीन तो मिल जायगी, लेकिन क्रांति का मेरा यह काम लज्जित हो जायगा। समाज-परिवर्तन की और समाज का आर्थिक ढांचा बदलने की आकांक्षा उससे तृप्त नहीं होगी। इसलिए जहां भी मैं गया हूं, मैंने यही समझाया है कि मुझे दान नहीं चाहिए, एक कुटुम्बीजन समझ कर मुझे अपना हक दीजिए और दरिद्रनारायण की सेवा में लग जाइए। मैंने लोगों को समझाया कि देखिए, यह तो वामनावतार प्रकट हुआ है और वह तीन कदम भूमि मांगता है। पहला कदम यह कि भूमिहीन गरीबों के वास्ते जैसे अपने लड़कों को देते हो, वैसे दो। दूसरा यह कि आपको गरीबों की सेवा की दीक्षा लेनी है, और तीसरा कदम यह कि गरीबों की सेवा करते-करते स्वयं गरीब बन जाना है। इस तरह एक के बाद एक तीन कदम जमीन दे सको तो बलि राजा के समान वह पूर्ण बलिदान होगा। उससे हिंदुस्तान का नकशा ही बदल जायगा।

जब मैं यह कहता हूं कि जो जमीन देनी है, वह पूरे उत्साह से देनी है और जिन्हें देनी है, उनके जैसा जीवन बिताने की तैयारी रखनी है, तो मेरा मतलब यह नहीं कि उन बेजमीनों की तरह दीन-हीन अवस्था बना कर रहना है, बल्कि यह कि वे और हम दोनों समान हकदार हैं, इस भावना से सम्मिलित भोग भोगना है और इस तरह साम्ययोग सिद्ध करना है।

इसलिए मैंने कहा कि मुझे भिक्षा नहीं मांगनी है, गरीबों की सेवा की दीक्षा देनी है। और मुझे यह कहते खुशी है कि लोगों के दिलों में यह बात बैठ रही है। आज ही एक भाई ने ललितपुर से ५१८ एकड़ जमीन का दानपत्र भेजा है। इस तरह अगर चारों ओर हवा फैल जाय—और मुझे इसमें शक नहीं कि चेचक की तरह सद्भावना भी फैल सकती है—तो एक बहुत बड़ा काम होगा और मुझे बहुत-बहुत उम्मीद है कि हिंदुस्तान जो नित्य असंख्य सत्पुरुषों के जन्मोत्सव मनाता है, उसमें सद्भावना काफी भरी पड़ी है। मैंने कई बार कहा है कि यह जो काला बाजार चल रहा है, उसकी निंदा करने की मेरी इच्छा नहीं होती, क्योंकि मैं जानता हूं कि लोगों के दिल पाक हैं। यह तो एक बिगड़ी हुई हवा है, जिसने लोगों के दिलों को भी बिगाड़ दिया है। आज ही श्री पुरुषोत्तमदासजी टंडन कहते थे कि हम कितना ही फूंक-फूंक कर कदम क्यों न रखें, पाप हो ही जाता है। यह सब उस कृत्रिम समाज-रचना का परिणाम है जिसमें पैसे को परमेश्वर माना गया है। हमारी सरकार तक उसी चीज की तरफ झुकी हुई नजर आती है। उसकी हालत उस किसान की-सी हो गई है, जो पैसे के लिए लाचार हो कर उसी दृष्टि से अपनी खेती का आयोजन करता है। सरकार भी डालर हासिल करने में ही अपनी रक्षा समझती है। इस तरह बुरी समाज-रचना और आर्थिक रचना के कारण लोगों से अनिच्छापूर्वक पाप हो रहा है। आम जनता का दिल शुद्ध है और मैं इसका साक्षी हूं, क्योंकि रोज कोई-न-कोई ऐसी घटना होती है, जो रामायण जैसे ग्रंथों में शरीक करने लायक कही जा सकती है। बहुत पवित्र दान मुझे मिल रहे हैं। कल की ही बात है, गाजियाबाद से एक बहन रात को करीब आठ बजे आकर अपनी सब-की-सब, ग्यारह एकड़ भूमि दे गई। मैं अक्सर रात को आठ बजे तक दान लेता हूं, फिर सो जाता हूं। एक दिन सवेरे रवाना होने के पहले, प्रार्थना के बाद, एक बहन दौड़ी-दौड़ी आई और मुझसे पूछा कि दान लेंगे ? अपनी दो एकड़ में से एक एकड़ जमीन

वह मुझे दे गई। रोज ऐसी दो-चार घटनाएं होती रहती हैं। इससे और कुछ परिणाम आये या न आये, मेरा दिल तो अत्यन्त पवित्र होता जा रहा है। मैं मानता हूं कि इस यज्ञ में मैं पूरी तरह से लगा रहा तो हिंदुस्तान का काम तो परमेश्वर की कृपा से होगा ही, लेकिन मेरा काम निश्चित होनेवाला है। इतनी शुद्धि का अनुभव, जो साधना मैं एकांत में करता था, उसमें भी मुझे नहीं हुआ। यद्यपि वह साधना तीव्र थी, एकाग्र थी और अनन्य थी, फिर भी आज जिस स्थिति का अनुभव मैं कर रहा हूं, वह उस साधना में भी मुझे नहीं हुआ। यहां तो मानो परमेश्वर ही अनन्त हस्तों से मेरे हृदय को धो रहा है। तो इस तरह मुझे विश्वास हो गया है कि बापू का दिया हुआ शिक्षण अगर हम पूरे दिल से अपनायेंगे तो जरूर हम उन्नत हो सकेंगे। दूसरा कोई तरीका हमारी उन्नति के लिए नहीं है।

राजघाट, १३ नवम्बर १९५१

: ३ :

शक्ति का अधिष्ठान

आज कई महीनों के बाद हमारे प्रिय नेता पंडित जवाहरलाल नेहरू से मिलने का और उनके दर्शन का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ और आज ही उनका जन्म-दिन भी था। इस अवसर पर मैं उनकी दीर्घायु और आरोग्य चाहता हूं। उनसे जो कुछ थोड़ी प्रारम्भिक बातचीत हुई उसमें उनके दिल का एक दुःख प्रकट हुआ। वे कहते थे, "हर कोई अपनी स्तुति करता है, वह अच्छी बात तो नहीं, फिर भी कुछ समझ में आ सकती है। लेकिन मुझे गहरा दुःख तो इसलिए है कि उम्मीदवार लोग अपनी प्रशंसा काफी नहीं समझते, बल्कि दूसरों की निन्दा भी करते हैं और मुझे यह सारा सहन करना पड़ता है। ऐसे झमेले को जो बर्दाश्त नहीं करता,

इच्छा होती है उससे भागने की ; लेकिन छोड़ा भी नहीं जा सकता, क्योंकि जिम्मेदारी है।"

यह मैं अपने और उनके बीच हुई बातचीत का सार अपने शब्दों में कह रहा हूं।

मैं समझता हूं कि वे तो जी-जान से लगे हैं कि कांग्रेस की शुद्धि हो। कांग्रेस निस्संदेह आज सबसे बड़ी जमात है, सिर्फ संख्या में ही नहीं, बल्कि आज भी उसमें कई अच्छे लोग हैं। उस संस्था के पीछे एक महान् इतिहास है जिसका गौरव भविष्य काल में गाया जायगा। इसलिए अगर उस संस्था की शुद्धि होती है तो हमारा बहुत कुछ काम बन सकता है।

लेकिन इसमें हमें इतनी मुश्किल क्यों मालूम हो रही है? इसका एक कारण तो यह है कि हम लोगों की कुछ दिशा भूल हो रही है। हम लोगों के ध्यान में एक बात नहीं आती कि जब देश दूसरे देश वालों के हाथ में होता है और आजादी हासिल करने का सवाल आता है तब शक्ति का अधिष्ठान राजकारण में रहता है और इसलिए महात्मा पुरुष भी राजनीति में हिस्सा लेना अपना कर्तव्य समझते हैं। तिलक महाराज से जब पूछा गया था कि स्वराज्य प्राप्त करने के पश्चात् आप क्या करेंगे तो उन्होंने कहा था कि मैं तो ज्ञान की उपासना करूंगा, विद्यार्थियों को पढ़ाऊंगा। उन्होंने ऐसा इसलिए कहा था कि अध्यापन-अध्ययन उनके जीवन की तृप्ति का आन्तरिक विषय था। दिन भर राजनैतिक काम करने के बाद रात को जब वे सोने जाते तो वे वेदाभ्यास कर लेते थे, ऐसी उनकी ज्ञान-पिपासा थी। फिर भी वे राजनीति में पड़े, क्योंकि वे जानते थे कि यदि इस वक्त राजनीति में नहीं पड़ते हैं तो किसी भी तरह की सेवा करना मुश्किल हो जाता है। इसलिए उस समय उन्होंने राजनीति को परम धर्म माना।

कहने का तात्पर्य यह है कि जिस पुरुष का प्रेम राजनीति में न हो उसे भी देश की परतंत्रता की स्थिति में राजनीति में उतरना

पड़ता है, क्योंकि वहां त्याग का अवसर होता है और त्याग में ही शक्ति का अधिष्ठान होता है।

लेकिन जब देश स्वतन्त्र हो जाता है तब शक्ति का अधिष्ठान बदल जाता है। शक्ति तब राजनीति में नहीं, सामाजिक सेवा में रहती है, क्योंकि फिर समाज का ढांचा बदलना होता है, आर्थिक विषमता मिटानी होती है। ये सारे काम सामाजिक क्षेत्र में करने पड़ते हैं। उसमें त्याग के प्रसंग आते हैं, कष्ट सहन करने पड़ते हैं, भोग-लालसा को संयम में रखना पड़ता है, वैराग्य की जरूरत पड़ती है। इसलिए शक्ति इसी क्षेत्र में रहती है। लेकिन जिनको इसका भान नहीं होता, वे गलतफहमी में रहते हैं कि शायद शक्ति का अधिष्ठान अब भी राजनीति में ही है; और वे उसी क्षेत्र की ओर दौड़ जाते हैं। वहां सत्ता तो रहती है, लेकिन शक्ति नहीं। सत्ता और शक्ति में बहुत अन्तर है। थोड़ा विचार करने से ही इन दोनों का फर्क मालूम हो जाता है। सत्ता में एक पद तो प्राप्त होता है। और, जब देश स्वतन्त्र हो गया है और सत्ता हाथ में ले ली है तो वहां जाना जरूरी हो जाता है। लेकिन वहां इने-गिने लोग ही जा सकते हैं। वहां एक सीमित क्षेत्र होता है, उसमें संविधान और कानून की सीमा होती है, उसके भीतर रह कर मालिक जिस तरह की सेवा चाहता है उस तरह की सेवा उसे करनी पड़ती है। लेकिन वहां भी मनुष्य को जाना पड़ता है और वहां मोह भी काफी है। कदम-कदम पर मोह, लोभ और लालच के अवसर आते रहते हैं, गिरने की संभावना रहती है। इसलिए वहां जनक महाराज जैसे निर्लिप्त वृत्ति वाले लोगों की आवश्यकता होती है। चन्द लोग ही वहां जा सकते हैं। उनकी तादाद बहुत कम होगी। बाकी अधिक लोग जो रह जाते हैं उन्हें सामाजिक क्षेत्र में काम करना चाहिए और देश को आगे ले जाने की शक्ति निर्माण करनी चाहिए। आज समाज की जो स्थिति है उसे स्वीकार कर उसकी सेवा करना सत्ता वालों के लिए भी सरल नहीं है। मिसाल के तौर पर कोई भी सत्ताधारी सत्ता के आधार पर, हिन्दुस्तान में बीड़ी

बन्द नहीं कर सकता, क्योंकि आज का समाज उस बुरी आदत को नहीं छोड़ सकता। इस बुरी आदत से छुड़ाना उन लोगों का काम है जो सामाजिक क्षेत्र में सेवा करते हैं। समाज-सेवक इसके खिलाफ़ समाज को आगे ले जाने का काम कर सकता है और अनुकूल वातावरण बन जाने पर सत्ताधारी बीड़ी को बन्द करने का कानून बना सकते हैं। अमरीका में आज शराबबन्दी नहीं हो सकती; क्योंकि वहां का समाज शराबबन्दी के लिए अनुकूल नहीं है, परन्तु हिन्दुस्तान में शराब बन्दी हो सकती है, क्योंकि यहां की भूमि में उसके अनुकूल वातावरण मौजूद है।

राजनैतिक सत्ता में समाज को आगे ले जाने की अधिक शक्ति नहीं है। वह शक्ति और वह वृत्ति सर्व बन्धनों से निर्लिप्त, सर्व स्थानों से अलिप्त, सेवापरायण वृत्ति से समाज की सेवा करने वालों में ही हो सकती है। क्योंकि इस वस्तु का भान राजनैतिक कार्यकर्त्ताओं को नहीं है, वे उसी क्षेत्र में जाने का प्रयत्न करते हैं। अगर यह भान हो तो बहुत सारे लोग सामाजिक क्षेत्र में आने की कोशिश करेंगे।

गांधीजी ने इसीलिए दूर दृष्टि से 'लोक सेवक संघ' बनाने की सलाह दी थी जिसे हमने नहीं माना। उसके लिए मैं किसी को दोषी नहीं ठहरा सकता। जिन्होंने इस कांग्रेस को कायम रखा उनके पीछे भी एक विचार था। चाहे उस विचार में गलती हो, पर मैं उसे मोह नहीं कहूंगा। लेकिन अब कांग्रेस के सामने ऐसा कोई कार्यक्रम चाहिए जिससे रोजमर्रा कुछ त्याग के प्रसंग आवें। जब तक कांग्रेस के सभासदों की कसौटी उस कार्यक्रम पर नहीं होती तब तक कांग्रेस की शुद्धि मृगजलवत् होगी, ऐसी मेरी नम्र राय है।

इसलिए मेरे जो मित्र आज कांग्रेस में हैं और वे जो किसान मजदूर प्रजा पार्टी में या समाजवादी पार्टी में हैं, उन सबसे मेरा कहना है कि जो लोग राजनीति में जाना चाहते हैं उन्हें मैं ना नहीं कहता, परन्तु बाकी सबको सामाजिक सेवा में लग जाना चाहिए। वरना समाज की प्रगति कुंठित हो

जायगी। इतना ही नहीं, समाज नीचे भी गिर सकता है। इसलिए एक बड़ी जमात समाज में ऐसी होनी चाहिए जो निरन्तर सेवा में लगी रहे, जागरूकता के साथ सेवा करती रहे, उसे राजकाज का अनुभव भी रहे, लेकिन सत्ता से अलग रह कर निर्भयता के साथ तटस्थ बुद्धि से अपने विचार जाहिर कर सके जिसका नैतिक असर सरकार पर और लोगों पर भी पड़ सके।

ऐसी वही जमात हो सकती है जो सत्ता में न पड़े—सत्ता की मर्यादा समझ कर—घृणा से नहीं, बल्कि यह समझ कर कि शक्ति का अधिष्ठान सत्ता में नहीं, समाज-सेवा में है।

आजकल एक ऐसा ख़याल हो रहा है कि जो बहुमत में हैं उनके खिलाफ एक विरोधी दल होना चाहिए, नहीं तो लोकतन्त्र का रूपान्तर फासिज्म (एकतन्त्र) में हो सकता है। यह सारी पश्चिम की परिभाषा है और क्योंकि हमने लोक-तन्त्र का विचार पश्चिम से ही ग्रहण किया है, वह परिभाषा भी रहेगी और वह विचार भी रहेगा। यह ख़याल गलत नहीं है। इसलिए बहुमत के अलावा अल्प मत वालों का भी आदर करके दोनों —चाहे राजनीति में विरोधी हों—मिल कर रहें और परस्पर प्रेम से काम करें; प्रेम में कोई फर्क न आने दें। इससे कुछ नियंत्रण रहेगा और सत्ताधारियों की शुद्धि होगी। वे गलतियां करने से बचेंगे। लेकिन इतने से काम पूरा नहीं होता। देश की शुद्धि का और देश की उन्नति का काम तभी होगा जब सत्ता के दायरे से अलग रह कर सब तरह से विवेकशील, अध्ययनशील, त्यागशील सेवकों की एक जमात कायम होगी। हमने ऐसे समाज को 'सर्वोदय समाज' का नाम दिया है। अगर इस विचार से लोग सहमत हों तो वे सर्वोदय के सेवक बन जायं। सर्वोदय कोई पंथ नहीं, उसमें कोई काम अनिवार्य नहीं, उसमें कोई कड़ा अनुशासन नहीं। प्रेम से, विचार समझ कर, सर्वोदय की सेवा करनी चाहिए। इसके पीछे जो दृष्टि है, उसे समझ कर सब लोग सर्वोदय-वृत्ति को स्वीकार करें।

राजघाट, १४ नवम्बर १९५१

: ४ :

लोकयात्रिक सरकार

हमारी इस पैदल यात्रा में कई तरह के अनुभव आते हैं और अनन्त प्रश्न पूछे जाते हैं। कुछ प्रश्न तो समान होते हैं और हर जगह वे ही पूछे जाते हैं। उनमें एक प्रश्न अक्सर होता है 'सेक्युलर स्टेट' के बारे में। एक जगह तो एक भाई ने कहा, "मनु महाराज ने धर्म के दशविध लक्षण बताये हैं, लेकिन हमारी सरकार कहती है कि हम तो धर्म को नहीं मानते। तब हमारा क्या कर्त्तव्य होता है? क्या हम मनु महाराज की आज्ञा का अनुसरण करें या इस धर्म-विहीन सरकार की कल्पना का?"

मुझे इस शख्स को विस्तार से समझाना पड़ा। अगर कोई विचार का प्रश्न पूछा जाता है तो चाहे वह बार-बार क्यों न पूछा जाय, मैं विस्तार से उत्तर देने की कोशिश करता हूं, क्योंकि चित्त के संदेह और संशय हमेशा सारे जीवन को कलुषित करते हैं और अक्सर यह देखा जाता है कि बहुत से संदेह शब्द-मूलक होते हैं। शब्दों का ठीक प्रयोग नहीं किया जाता है, इसलिए बहुत-सी गलतफहमियां हुआ करती हैं। मनु महाराज ने दशविध धर्म बताया है। ईसा की दशविध आज्ञा क्रिस्ती और यहूदी धर्म में मशहूर हैं। वे दश आज्ञाएं और मनु महाराज के दशविध धर्म एक ही हैं, बल्कि यदि ऐतिहासिक दृष्टि से देखें तो शायद ऐसा ही निष्कर्ष निकलेगा कि मनु महाराज की दशविध आज्ञाएं रूपान्तरित होकर यहूदी और क्रिस्ती धर्म में पहुंच गई हैं। मनु एक अत्यन्त प्राचीन ऋषि हो गये हैं। मनुस्मृति तो उस हिसाब से बहुत अर्वाचीन ग्रंथ है, लेकिन मनु स्वयं बहुत प्राचीन हैं और उनके वचनों का इतना असर हमारे समाज में था कि वैदिक धर्म में एक स्थान पर कहा है– "यत् किंच मनु अवदत् तद् भेषजम्।" मनु ने जो भी कहा है, भेषज है, हितकारी पथ्य है, औषधि है। चाहे औषधि कड़वी मालूम पड़े तो भी परिणाम गुणकारी होता है। इसलिए सेवन करना

चाहिए। ऐसा वाक्य मनुस्मृति में है। वह आधुनिक मनुस्मृति को ध्यान में रख कर नहीं, बल्कि प्राचीन मनुवचन को, जो श्रद्धा से परम्परागत समाज में पहुंच गया है, ध्यान में रख कर कहा गया है। मैंने यह सब उस भाई को समझाया। समझाया क्या, मानो एक क्लास ही लिया उसका।

उसका एक-एक लक्षण ऐसा है कि जिसके बगैर न समाज का धारण हो सकता है, न व्यक्ति का जीवन उन्नत हो सकता है। उस आज्ञा में एक अस्तेय व्रत है, यानी चोरी न करना। अस्तेय तो धर्मसंगत है और हमारी सरकार जो धर्मातीत है तो क्या वह चोरी चाहेगी? उसमें शौचम् धर्म बताया है तो क्या हमारी सरकार सफाई और आरोग्य नहीं चाहेगी? उसमें विद्या का उल्लेख है, तो क्या सेक्युलर स्टेट में विद्या न रहेगी, अविद्या रहेगी? और वहां तो धर्म को सत्य बताया है तो हमारी सरकार ने भी 'सत्यमेव जयते' यह बिरुद बनाया है। यह बिरुद-वाक्य उपनिषदों में से लिया है, जो इस भारत-भूमि के मूल ग्रंथों में से है।

तो 'धर्म' शब्द इतना विशाल और व्यापक है कि उसके सारे अर्थ बताने वाला शब्द मैंने अब तक किसी भाषा में नहीं देखा। सारे अर्थ तो जाने दीजिए, उसके बहुत से अर्थ मैंने देखे हों, ऐसा भी कोई शब्द मैंने नहीं पाया है। इसलिए जो लोग सरकार को धर्म विहीन कहते हैं वे तो मानो गाली देते हैं। और धर्मातीत भी क्या हो सकता है? जो धर्म के बाहर है, वह सिवा अधर्म के और क्या हो सकता है? बल्कि अगर हम इतना भी कहें कि धर्म से असम्बद्ध हैं तो भी अर्थ ठीक नहीं हो पाता। धर्म ऐसा शब्द है। धर्म से असंबद्ध उससे विहीन, ऐसी हमारी सरकार हो तो वह एक भ्रम-प्रचार ही हो सकता है। ऐसा भ्रान्त प्रचार काफी हुआ है और कुछ जानने वाले अच्छे लोगों ने भी इस तरह की टीका की है।

यह सारा क्या हो रहा है? सेक्युलर शब्द का तर्जुमा हमारी भाषा में हम किस तरह करें, यह एक नाहक का सवाल हमारे सामने पेश हुआ है। सेक्युलर का अर्थ अगर हम पंथातीत या अपांथिक

करें तो भी ठीक अर्थ नहीं प्रकट होता। पंथ याने अंग्रेजी में जिसे हम 'पाथ' कहते हैं। तो पंथातीत याने मार्ग-विहीन सरकार हुई। वह शब्द तो गुमराह का पर्याय है। इसके लिए अपांथिक शब्द भी नहीं चल सकता।

इसलिए सेक्युलर शब्द का अर्थ बताने के लिए मैंने वेदान्ती शब्द चुन लिया और उस भाई को समझाया कि हमारी सरकार वैदिक नहीं होगी, बल्कि वेदान्ती होगी। वेदान्त में किसी उपासना का निषेध नहीं है। जितनी उपासनाएं हैं, उन सबको वेद समान भाव से देखते हैं। फिर भी वेदान्त की अपनी निज की कोई उपासना नहीं रक्खी, इसलिए अगर हम वेदान्ती सरकार कहें तो कुछ अच्छा अर्थ प्रकट होता है।

एक दफा ऐसा अनुभव हुआ कि रामकृष्ण आश्रम के एक संन्यासी कहने लगे, "हमारा देश किधर जा रहा है?" अक्सर देखा गया है कि रामकृष्ण मिशन के लोगों में किसी प्रकार की साम्प्रदायिक भावना नहीं होती। लेकिन फिर भी उस संन्यासी भाई ने वैसा सवाल किया। मैंने पूछा, "किधर जा रहा है?" वह बोले, "सेक्युलर स्टेट वाले तो आध्यात्मिक मूल्यों से इन्कार करते हैं।" मैंने कहा, "अगर ऐसी बात होती तो सत्य को बिरुद न बनाया जाता।" इसलिए मेरा तो कहना है कि अंग्रेजी शब्द के कारण ही सारी गड़बड़ी हुई है। मैंने सेक्युलर के लिए वेदान्ती शब्द का प्रयोग किया है। हमारी सरकार मेरी दृष्टि से वेदान्ती सरकार है। जिस वेदान्त को आप मानते हैं उसको वे भी मानते हैं। हमारे यहां २१ वर्ष के बाद हर एक को वोट का अधिकार है। मैंने उनसे कहा कि आप २१ साल की आयु वाली बात भूल जाइए। परन्तु हरएक को हमारे विधान में जो एक वोट का अधिकार दिया गया है वह किस बुनियाद पर दिया गया है? अगर शरीर की बुनियाद पर दिया गया होता तो हरएक के शरीर में भेद है, एक का शरीर दूसरे के शरीर से भिन्न होता है, किसी का शरीर दूसरे के शरीर से तीन गुणा भी बलवान हो सकता है। अगर शरीर की

बुनियाद हो तो एक को एक वोट दिया जाय तो दूसरे को दो, तीन या चार भी देने होंगे। और अगर बुद्धि की बुनियाद पर अर्थ लगाते हैं तो एक की बुद्धि दूसरे की बुद्धि से हजार गुना कम-बेश हो सकती है, क्योंकि बुद्धि में तो हज़ार गुना फर्क हो सकता है। फिर एक वोट का आधार इसके सिवा क्या हो सकता है कि हरएक में एक आत्मा विराजमान है। सिवा आत्म-ज्ञान की बुनियाद के इसका और कोई आधार हो नहीं सकता। हां, २१ वर्ष उम्र की कैद है। मनुष्य को वोट है, पशु को नहीं। फिर किस बुनियाद पर सेक्युलर कहा? एक तो यह कि हमारा बिरुद 'सत्यमेव जयते' है और दूसरा यह कि सबको ही समान माना गया है। दोनों को मिलाकर स्टेट सेक्युलर बन सकता है। याने सेक्युलर स्टेट का आधार आत्मज्ञान ही है। यह जब मैंने कहा तब उनका समाधान हुआ। उन्होंने पूछा कि क्या आप जाहिरा तौर पर कह सकते हैं कि सरकार वेदान्ती है। मैंने कहा कि मैं जाहिरा तौर पर नहीं कहूंगा। आपको समझाने के लिए मैंने इस शब्द का प्रयोग किया है। हमारी सरकार नास्तिक नहीं है। वह आध्यात्मिक मूल्यों को मानती है, आत्मा को मानती है, उसकी समानता को मानती है। परन्तु फिर भी वेदान्त जितनी गहराई में जा सकता है उतनी गहराई में वह नहीं जा सकती। अब अगर हम एक शब्द सेक्युलर का तर्जुमा नहीं कर सकते और भाव तो प्रकट करना ही है तो 'निष्पक्ष न्यायनिष्ठ व्यावहारिक' सरकार कह सकते हैं। एक ही किंतु कठिन संस्कृत शब्द में कहना हो तो 'लोक-यात्रिक' सरकार कह सकते हैं। याने वह सरकार जो लोकयात्रा के बल पर जनता को चलाना चाहती है। कठिन शब्द है, लेकिन उससे कठिनाई कुछ दूर हो सकती है।

पर यह सारी आफत क्यों? इसलिए कि हमारी सरकार का सारा चिन्तन अंग्रेजी में होता है, फिर उसका तर्जुमा करना पड़ता है। किसी भाषा का अनुवाद दूसरी भाषा में एकदम ठीक नहीं होता। अगर हम अपनी जबान में सोचते होते तो वे सारी गलतफहमियां टल जातीं, जो आज हो रही हैं और जिसके कारण यह

सब कठिनाई पेश आ रही है।

अंग्रेजी भाषा को पंद्रह साल का जीवन दे दिया गया है। इसका नतीजा यह हो रहा है कि हमारी सरकार का कारोबार किस तरह चलता है, उसका ज्ञान हमारे यहां के एक पढ़े-लिखे किसान को भी उतना हो सकता है जितना कि इंग्लैंड व अमरीका के लोगों को होता है। हमारी जनता को अंधेरे में रखना ठीक नहीं। ऐसी हालत में अंग्रेजी भाषा से जितने शीघ्र मुक्त हो सकते हैं, होने की आवश्यकता है और इस आवश्यकता को मैं कदम-कदम पर देख रहा हूं। वेदान्ती शब्द इतना महान है कि वह भारतीय जनता को प्राण के समान है, लेकिन अब उसे टालने की वृत्ति हो रही है।

सेक्युलर शब्द के कारण बड़े-से-बड़े लोगों में गलत-फहमी होती है। अगर किसी स्कूल में वेद की प्रार्थना होती है तो पूछते हैं कि सेक्युलर स्टेट की सरकार में वैदिक मंत्र कैसे पढ़ा जा सकता है? गत सप्ताह मैं अलीगढ़ विश्वविद्यालय में गया था। वहां के विद्यार्थियों और प्रोफेसरों ने बहुत ही प्रेम से मेरा स्वागत किया। मैंने उन्हें जो बातें बताईं वे साधारण नहीं थीं, गम्भीर थीं। मैंने सब धर्मों की शुद्धि की बात कही थी और इस्लाम की शुद्धि की व्याख्या भी की थी। उन लोगों का रिवाज है कि आरम्भ में खड़े होकर कुरान की आयत पढ़ें। जाकिर हुसैन साहब ने मुझसे पूछा तो मैं बहुत खुशी से खड़ा हो गया। सारा कार्यक्रम बड़े प्रेम से हुआ। मुझे भी कुरान का कुछ अभ्यास है। इसलिए आयतें सुन कर खुशी हुई। लेकिन अगर इस पर कोई कहे कि सेक्युलर स्टेट की यूनिवर्सिटी में कुरान की आयतें क्यों पढ़ी जाती हैं, तो यह गलत है। एक परदेसी शब्द के कारण ऐसी गलतफहमी हो रही है। आज मैंने इसका ज़िक्र आप लोगों से इसलिए किया कि आप देखेंगे कि आगामी चुनाव में इस शब्द का कितना दुरुपयोग किया जायगा और जगह-जगह इसके कारण गलतफहमियां भी पैदा की जायेंगी।

राजघाट, १५ नवम्बर १९५५

: ५ :

सर्वोदय का पंचविध कार्य-क्रम

देश की वर्तमान हालत की मीमांसा करते हुए परसों मैंने बताया था कि एक तो अधिकारी पक्ष रहेगा जो लोगों की ओर से बहुसंख्या के आधार पर राजकाज की ज़िम्मेदारी उठायेगा और दूसरा एक विरोधी पक्ष होगा जो उनके कार्यों में प्रति-सहकार करेगा, यानी जहां सरकार की आवश्यकता मालूम हो वहां सहकार करेगा और जहां विरोध की आवश्यकता हो वहां विरोध करेगा। ये दोनों राजनैतिक क्षेत्र में काम करेंगे। इनके अलावा तीसरा एक निष्पक्ष समाज होना चाहिए, जिसकी गिनती न अधिकारी पक्ष में होगी, न विरोधी पक्ष में, बल्कि यह एक अलग जमात होगी जिसकी अपनी एक खासियत होगी और वह जमात सेवा के काम में लगी हुई होगी। इस तरह की जमात जितनी विशाल और शक्तिशाली होगी उतना ही राज्यतंत्र और लोकतन्त्र दोनों ही शुद्ध और मर्यादा में रहेंगे। वह जो तीसरा निष्पक्ष समाज होगा उसका एक बड़ा भारी देशव्यापी कार्यक्रम होगा। कार्यक्रम के कुछ पहलू एक दिग्दर्शन के तौर पर मैं आप लोगों के सामने आज रखने को सोच रहा हूं।

उस जमात के जो काम होंगे उनमें बुनियादी और प्राथमिक काम यह रहेगा कि वे लोग जीवन-शोधन का काम करेंगे। अपने निजी जीवन की भी शुद्धि और अपने कुटुम्बी जन, मित्र, सहधर्मी सबकी जीवन-शुद्धि नित्य निरंतर परखते रहेंगे। अगर कहीं असत्य अपने में छिप रहा है तो बारीकी से उसका शोधन करेंगे। उस असत्य को मिटा देंगे और यह भी देखेंगे कि हृदय के किसी कोने में अगर भय के अंश रह गये हैं तो ये किस प्रकार के हैं। भय अनेक प्रकार के होते हैं। उन भयों में से कौन से प्रकार के वे हैं जो हृदय में राज्य कर रहे हैं? उन सब अंशों को देख कर उनसे मुक्ति पाने की कोशिश करेंगे। अर्थात् सदा सर्वदा निर्भय बनने का उनका

प्रयत्न रहेगा। उनकी हरएक कृति हमेशा संयमयुक्त रहेगी—वाक्-संयम, काय-संयम, मन-संयम, यह उनकी नित्य साधना रहेगी। वह यह भी देखेंगे कि अपनी आजीविका का मुख्य अंश, जहां तक हो सकता है, उत्पादक शरीर-श्रम पर चलावेंगे और निजी तथा पारिवारिक और सामाजिक तीनों दृष्टि से प्रयोग करेंगे। यह सारा जीवन-शोधन का बुनियादी काम उनका प्रथम कार्य होगा।

दूसरी बात उन्हें यह करनी होगी कि नित्य निरन्तर अध्ययनशील रहना होगा। लोकजीवन की जितनी शाखाएं और उपशाखाएं हैं उनका वे अध्ययन करेंगे। हर तरह की उपयुक्त जानकारी उनके पास रहेगी। यह नहीं कि वे व्यर्थ की जानकारी का परिग्रह करेंगे। बल्कि जो जानकारी, समाज-जीवन और व्यक्तिगत जीवन, आन्तरिक तथा बाह्य के लिए जरूरी है उसे वे हासिल करते रहेंगे। इस तरह अध्ययन होता रहता है तभी स्वराज्य तरक्की करता है। स्वराज्य में ऐसे अध्ययनशील लोगों की बहुत जरूरत रहती है। बिना अध्ययन के कोई समाज गहरा काम नहीं कर पायगा। मैं देख रहा हूं कि इस दिशा में बहुत काम नहीं हो रहा है। मैं इसे बुनियादी काम तो नहीं कहूंगा, परन्तु आवश्यक और महत्व का कहूंगा।

तीसरी बात यह करनी होगी कि समाज सेवा के जो क्षेत्र हैं, खासकर उपेक्षित क्षेत्र, जिनकी ओर समाज का ध्यान नहीं है, जिन्हें आगे ले जाने में समाज और सरकार दोनों का ख़याल नहीं है, उनकी ओर ध्यान देगा। सब तरह की सेवा में रात-दिन निष्काम बुद्धि से लगे रहना, दीर्घ काल में उसका फल मिलेगा, ऐसी निष्ठा रख कर कभी तेज कम नहीं होने देना, चारों ओर अंधेरा फैला हो तो भी दीपक के समान अंधेरे का भान न रखकर मस्ती से सेवा करते रहना, यह उनका काम रहेगा।

चौथा काम, समाज-जीवन में या सरकारी कामों में जहां कहीं गलती देखें वहां उसका निर्देश करना। यह जरूरी नहीं कि

निर्देश जाहिरा तौर पर ही किया जाय, परन्तु जहां जाहिरा तौर पर निर्देश करने का मौका आवे वहां रागद्वेष-रहित होकर स्पष्ट शब्दों में उसे जनता के सामने रखना और उसमें अपनी प्रतिभा प्रकट करना उनका काम होगा। इस तरह सामाजिक और सरकारी कामों के बारे में चिन्तन करते हुए उनमें कहीं दोष आ जायं तो उन्हें प्रकट करना उनका कर्तव्य होगा।

कभी-कभी उन दोषों के लिए क्रियात्मक प्रतिकार का मौका भी आ सकता है। वह इतना सहज होगा कि जिनके विरोध में वह होगा उन्हें भी वह प्रिय लगेगा, क्योंकि वह उनकी सेवा के लिए ही होगा। उसे प्रतिकार का नाम देने के बजाय शस्त्र-क्रिया कहना ही ठीक रहेगा; क्योंकि शस्त्र-क्रिया जिस पर होती है उसे भी वह प्रिय होती है। उसे सत्याग्रह भी कह सकते हैं। परन्तु आज सत्याग्रह का अर्थ गिर गया है। उत्तम-से-उत्तम शब्द भी नालायक हाथों में कैसे बिगड़ सकते हैं और मामूली-से-मामूली शब्द भी अच्छे हाथों में कैसे उठ सकते हैं, उसका यह एक उदाहरण है।

इस तरह सत्याग्रह आज धमकी के अर्थ में, शस्त्र के अर्थ में और शस्त्र के अभाव में शस्त्रवत् हिंसा के अर्थ में इस्तेमाल किया जा रहा है। इस तरह यह शब्द बिगड़ गया है। इसमें शब्द का दोष नहीं। शब्द स्वच्छ है। इसलिए उस शब्द का प्रयोग करने में दोष नहीं है और उसका प्रयोग मैं करूंगा। तो वाणी से निर्देश और कृति से सत्याग्रह यह भी उन कार्यकर्ताओं का काम रहेगा।

इसके अलावा पांचवां काम उनका यह रहेगा कि समाज-जीवन में जो भारी मसले पैदा होते हैं, उनका अहिंसात्मक हल वे खोज लें। अहिंसात्मक तथा नैतिक तरीके से बड़ी-बड़ी समस्याएं भी हल हो सकती हैं, यह वे साबित कर देंगे। अगर ऐसा साबित कर सकते हैं तो नैतिक व अहिंसात्मक तरीकों पर लोगों की श्रद्धा जम सकती है। लोगों को नैतिक तरीके प्रिय तो होते ही हैं, लेकिन प्रत्यक्ष परिणाम देखे बगैर लोगों की निष्ठा स्थिर नहीं हो सकती। प्रत्यक्ष प्रयोग से लोगों की निष्ठा साबित करना यह इस

निष्पक्ष समाज का पांचवां काम होगा।

इस तरह का पंच-विध काम 'सर्वोदय समाज' को करना होगा। मैंने यथाशक्ति पांचों प्रकार के कामों में हाथ बंटाया है। अभी जो काम मैंने उठाया है वह पांचवें प्रकार का है। भूमि का प्रश्न हल करने में गलत और नीति-हीन तरीके परदेशों में अख्तियार किये गये हैं, जिसे ये लोग यश कहते हैं और जिसका कुछ आकर्षण हमारे शिक्षितों में भी है। उन तरीकों से बुद्धि निवृत्त हो और अच्छे नैतिक तरीकों से भूमि का मसला हल हो ऐसी कोशिश मैं कर रहा हूं। मैं जानता हूं कि यह कठिन काम है। आसान समझ कर इसे मैंने नहीं उठाया है। यह इतना कठिन है कि अपनी बुद्धि से मैं इसे नहीं उठा सकता था। बल्कि वह सहज ही मेरे पास आ पहुंचा है तो इसे परमेश्वर का आदेश मानता हूं और जब आ पहुंचा है तो उतनी योग्यता है या नहीं ऐसी संदेह-बुद्धि से सोचना भी ठीक नहीं समझता हूं। मुझे मान लेना चाहिए कि जिस शक्ति ने यह काम हमारे सामने उपस्थित किया है वही शक्ति उसकी पूर्ति के लिए भी आवश्यक बल देगी। इस निष्ठा से, श्रद्धा से, अत्यन्त नम्र होकर मैंने यह काम उठाया है और मैं इस वक्त सर्वोदय में मानने वाले हर शख्स से सहानुभूति और सहकार चाहता हूं।

राजघाट, १६ नवम्बर १९५१

: ६ :

मालिक-मजदूर : एक तस्वीर

मैंने मजदूरी के कई काम अपनी जिन्दगी में किये हैं। इतना ही नहीं, मजदूरों की हालत किस तरह की होती है उस बारे में मैं सोचता रहा हूं और उसे सुधारने के तरीके ढूंढता रहा हूं। तरीके तब तक मालूम नहीं होते जब तक कि मजदूर का-सा पेशा अख्तियार नहीं किया जाता। मजदूरी के काम अपनाने की मेरी कोशिश

रही है और एक मजदूर के नाते ही मैं यहां पहुंचा हूं, मजदूर के ढंग से ही आया हूं। मीटिंग के लिए मजदूर पैदल ही आ सकता है वैसे ही मैं भी पैदल चल कर ही आया। मजदूर को ठीक समय पर आना होता है, क्योंकि वह अगर देरी से पहुंचे तो मिल का दर्वाजा उसके लिए बन्द हो जाता है। वैसे ही मैंने भी ठीक वक्त पर यहां पहुंचने की कोशिश की है। जो भी दो-चार शब्द मैं यहां कहूंगा वे ऐसे होंगे जैसे कि आप में से कोई आपसे कह रहा हो।

सब लोग जानते हैं कि हिन्दुस्तान में मजदूरों की हालत अच्छी नहीं है। शहर के मजदूरों की पुकार तो लोगों के कानों तक पहुंच भी जाती है मगर देहात के मजदूरों की आवाज किसी के कानों तक नहीं पहुंचती, क्योंकि उसे सुनाने वाला कोई नहीं होता। इसलिए देहातों के मजदूरों की हालत सबसे खराब है, ऐसा आप कह सकते हैं, लेकिन कुछ लोगों की हालत तो अब देहात के मजदूरों से भी खराब है। वे रोजी की तलाश में दर-दर भटकते फिरते हैं। इसलिए हिन्दुस्तान में एक से बढ़ कर एक का दुःख है। दुःखियों की एक बहुत भारी जमात ही यहां है। इतनी बड़ी जमात देश में दुःखी रहे यह देश के लिए अच्छी बात नहीं है।

यह दुःख क्यों भुगतना पड़ रहा है? हिन्दुस्तान में सदियों से काम को नीचा माना गया है। यहां काम के बंटवारे किये गए। चन्द दिमाग़ी काम करनेवाले लोगों को सबसे अव्वल दर्जा दिया गया। राज का कारोबार चलानेवालों को दूसरा, व्यापार और कृषि करनेवालों को तीसरा और मलमूत्र की सफाई करनेवालों को सबसे नीचा। इस प्रकार दर्जे-पर-दर्जे बन गये। जो जितना उपयोगी काम करे उसकी इज्जत बढ़ने के बजाय घटती गई। जो हाथ से मेहनत नहीं करता उसको न सिर्फ इज्ज़त, बल्कि पैसा भी ज्यादा दिया जाने लगा।

एक जमाना था जब ब्राह्मण को इज्जत मिलती थी मगर

पैसा नहीं। आज तो इज्जत और दौलत ज्यादा-से-ज्यादा उसको मिलती है जो पैदावार का काम कम-से-कम करता है। समाज में नीची जमातें अपना काम करती रहीं मगर उन्हें सम्मान हासिल नहीं हुआ। किसान खेती करता रहा, भंगी सफाई का काम करता रहा और बुनने वाला बुनता रहा, मगर उनके दिमाग में ख़याल यही रहा कि वे लाचारी से अपना काम करते हैं। और अगर उससे नजात मिल सके तो अच्छी बात है। समाज में ऐसी वृत्ति पैदा हो गई कि जो श्रम करने वाले हैं उनको श्रम न करनेवालों से हीन माना जाने लगा और काम की इज्जत ही कम नहीं हुई, बल्कि उसकी कीमत भी घट गई। यही कारण है कि जब परदेशी लोग आये तो उनका काम यहां जम गया। यहां के जो लोग मेहनत करने वाले थे उनका सहारा उन्हें मिल गया। यहां के व्यापारियों को उन्होंने जीत लिया और बाद में उन्हें राज भी मिल गया, क्योंकि आम लोगों को इस बात की फिक्र नहीं थी कि राज किस का है। देश के बचाव में किसी की दिलचस्पी नहीं रही थी। इस तरह अंग्रेज यहां आये और थोड़े परिश्रम से ही उन्होंने राज हासिल कर लिया। हिन्दुस्तान का यह इतिहास हमारे सामने है।

समाज में छूत-अछूत का भेद भी बढ़ता गया और इस प्रकार समाज का सारा ढांचा बिलकुल बिगड़ गया। गांधीजी ने अपनी ज़िन्दगी भर काम करके लोगों को सबक दिया मगर फिर भी आज तक मजदूरी के काम के लिए प्रतिष्ठा या इज्जत की भावना पढ़े-लिखे लोगों के दिलों में नहीं है। कीमत भी मजदूरी की कम मिलती है। यह हालत हमको मिटानी है। जो पैदावार का काम करता है वह हिन्दुस्तान का अच्छा नागरिक माना जाय, वह अपना सिर ऊंचा करके चल सके, उसके जीवन में ऐसा आनन्द दाखिल हो कि जिससे वह अपने को सुखी समझ सके। मैंने यह जो कदम या आन्दोलन उठाया है वह इसी दृष्टि से उठाया है। जो भूमिहीन हैं उन्हें जमीनें दिला रहा हूं। ये जमीनें मैं भीख के तौर पर नहीं मांगता, बल्कि हक के तौर पर मांगता हूं। जो जमीन पर

काश्त करता है वह जमीन का मालिक न हो और जो काश्त नहीं करता वह उसका मालिक हो तो फिर देश में पैदावार कैसे बढ़ेगी ?

जिस जमीन को भगवान ने पैदा किया उसका कोई मालिक नहीं हो सकता । उसके तो चाकर ही हो सकते हैं । इसलिए मालिक बनने का दावा गलत है । भूमिहीन लोगों का हक कबूल करके घर के लड़के की तरह उनको जमीन दे दी जाय, उपकार समझ कर नहीं । भूमि देने वाले यह मान लें कि जो अन्याय अबतक हो रहा था उससे वे बरी हो रहे हैं । मेरे जैसा जमीन मांगने आता है तो अपना भाग्य समझो कि आपका बोझ कम करने वाला आया है । जब किसी के शरीर का वजन बहुत बढ़ जाता है तो उसकी सेहत खतरे में होती है । अगर उसको अपनी सेहत सुधारनी है तो डाक्टर कहेगा कि वजन कम करो, दूध घी कम खाओ । तो वह डाक्टर दुश्मन नहीं है, दोस्त है । मना करने पर भी मिठाई खाते रहने वाले की जिंदगी खतम हो जायेगी । मरना तो सभी को है, इसलिए मरने का दुःख नहीं । पर दुःख बहुत झेलने पड़ेंगे । डाक्टर की राय मान कर कोई दूध छोड़े तो क्या वह त्यागी और तपस्वी गिना जायेगा ? वह समझदार गिना जायगा । उसी प्रकार मैं जमींदारों को समझाता हूं । लोग समझ रहे हैं और दे रहे हैं । कुछ लोग नहीं देते तो उसकी मैं फिक्र नही करता, क्योंकि वे अगर आज नहीं देते तो कल देने वाले है । एक विचार-बीज हमने बोया तो वह आज नहीं तो कल जरूर उगने वाला है । उगे बिना नहीं रहेगा । मैं प्रेम से समझाता हूं । मेरा हक मांगता हूं । लोग दे रहे हैं । इससे एक हवा बन रही है और इससे न केवल भूमिहीनों की ही, बल्कि सब मजदूरों की तरक्की होगी । लोग पूछते हैं कि देहात के मजदूरों का काम तो आप करते हैं, लेकिन इससे शहर के मजदूरों की हालत कैसे सुधरेगी ? मैं कहता हूं कि मै सब मजदूरों की सेवा करने वाला हूं । जो काम मैंने उठाया है वह कामयाब हो जाय तो मजदूरों की इज्जत बढ़ेगी । लोग भी उनके साथ काम करने लगेंगे । वेतन वगैरह

के बारे में भी उचित सुधार होगा । "एकै साधे सब सधे ।"

आज बहुत करके मजदूरों के लिए इतना ही आन्दोलन किया जाता है कि उनकी तनख्वाह वगैरह बढ़ाई जाय, जिस स्थिति में वे हैं उसमें थोड़ा-सा परिवर्तन हो जाय । लेकिन होना यह चाहिए कि मिलें मालिक और मजदूरों की साझे में हों । साल भर में जो कुछ मुनाफा हो उसका कुछ हिस्सा धन्धे के बढ़ावे के लिए सुरक्षित रहे । बाकी में से कुछ मालिक को और कुछ मजदूरों को दिया जाय । मालिक को कितना दिया जाय यह मालिक तय नहीं करेगा, वह तो इतना ही कहेगा कि मैंने अपनी बुद्धि लगाई है । कारोबार में जो पूंजी मैंने रोकी है वह पूंजी मेरे पास की है, लेकिन मेरी नहीं है ।

वास्तव में पूंजी तो सारे देश की है और मालिक भी देश का है । वह एक मेनेजर है, उसने अकल लगाई है, इसलिए उसको मजदूर जो देंगे उस पर सन्तुष्ट रहना चाहिए । इस तरह मालिक करेगा तो उसका जीवन संतुष्ट होगा, सुखी होगा और मजदूर भी सुखी होंगे । कोई पूछ सकता है कि क्या इस जमाने में ऐसा करने वाले मालिक होंगे ? मैं कहूंगा कि सब एकदम तैयार नहीं होंगे, लेकिन उनकी बुद्धि को समझाया जाय तो कुछ मालिक जरूर तैयार होंगे । ऐसी अगर एक भी मिसाल हिन्दुस्तान के सामने आती है तो उसका असर सारे हिन्दुस्तान पर पड़ेगा । ऐसे मालिक का जीवन आनन्दमय होगा । मजदूर उसकी सेवा करने को तैयार होंगे और सबका प्रेम उसे मिलता रहेगा । ऐसा दृश्य दिखाई देगा तो उसकी जाति के दूसरे लोग भी तैयार होंगे । मनुष्य के हृदय में अच्छी भावनाएं होती हैं । भावनाहीन कोई नहीं है । इसकी एक कसौटी तो यह है कि जो मालिक हैं उसके भी बाल-बच्चे होते हैं और वह घर के लोगों के साथ प्रेम का व्यवहार करता है । जाहिर है कि वह प्रेम को जानता है, उसके मन में सद्भावना भरी है । एक प्रवाह में वह बह गया है । बस इतना ही है । इसलिए मजदूरों के बारे में जैसा सोचना चाहिए वैसा वह सोच नहीं पाता । एक गलत

खयाल पैदा हो गया है कि सस्ती-से-सस्ती चीज बाजार में भेजनी चाहिए। और सस्ती चीज मजदूरों को कम मजदूरी देकर ही बन सकती है। यदि उनको यह दिखे कि पैसे से सच्ची रक्षा नहीं हो सकती, प्रेम से ही हो सकती है, तब वह समझ जायगा। इसके लिए मजदूरों को भी जागृत होना चाहिए। जागृति तो मजदूरों में है। उठते हैं, बीच-बीच में हड़ताल भी करते हैं, लेकिन मेरा मतलब इससे नहीं है। उन्हें शिक्षण मिलना चाहिए। वे जो काम कर रहे हैं उसके इर्द-गिर्द का सारा ज्ञान उन्हें होना चाहिए। आज वे बुनने का काम करते हैं, लेकिन बुनने का विज्ञान नहीं जानते। यह नहीं जानते कि माल कहां से आता है और कहां बिकता है। उनके लिए ऐसे स्कूल होंगे जहां यह सब ज्ञान उन्हें दिया जायगा जिससे उनकी क्षमता बढ़ेगी, इज्जत बढ़ेगी और मालिकों को भी लगेगा कि इनको मिल का कारोबार भी सौंपा जा सकता है।

कहा जाता है कि मिल-एरिया में शराबबन्दी नहीं होनी चाहिए। मजदूर थक कर आते हैं तो शराब पीने से थकान उतर जाती है। जैसे हम दिन भर के काम के बाद विश्रांति के तौर पर राम-नाम लेते हैं, तुलसी-रामायण पढ़ते हैं, वैसे ही मजदूरों के लिए राम-नाम की जगह मानो शराब ने ले रखी है। कुछ लोग कहते हैं कि "आप मजदूरों के बराबर श्रम नहीं करते इसलिए आपको शराब की जरूरत महसूस नहीं होती।" एक शिक्षित भाई ने मुझे बड़ा लम्बा-चौड़ा पत्र लिखा था कि "बिना अनुभव के आपको बोलना नहीं चाहिए। क्या आपने शराब चखी है? शराब चखी नहीं तो उसकी लज्जत आप क्या जानें?"

यह तो अनुभव की बात है कि जहां मजदूरों के बीच शराब आई है उसने उनका नाश कर दिया है, और जहां शराबबन्दी हुई है मजदूरों का जीवन सुधरा है। बंबई का यही अनुभव है। मद्रास में शराबबन्दी हुई। उसके बाद तहकीकात की गई और मालूम हुआ कि मजदूरों की जिंदगी सुधरी है। मजदूरों की स्त्रियां

शराबबन्दी के लिए आभार मानती हैं। आप लोगों को मांग करनी चाहिए कि सरकार शराबबन्दी करे। हम पीना नहीं चाहते। कोई कहेगा कि दुकानें हों तो भी आप क्यों पीते हैं? उसका उत्तर आप दें कि हम इतने तपस्वी नहीं हैं कि मोह की चीज सामने होते हुए भी हम उसमें न फसें। शराब की दुकानें देखकर हमें पीने का मोह होता है। इसलिए शराबबन्दी होनी ही चाहिए।

मैंने इस तरह दो बातें बताईं कि उन्हें अच्छी शिक्षा मिले, जिससे कि जो धंधा वे करते हैं उसके माहिर बनें और दूसरी चीज, उनका जीवन सुधार हो और व्यसन दूर हों। यदि हम चाहते हैं कि मजदूर अच्छे कारीगर बनें तो ये बातें आवश्यक हैं। फिर उनकी ओर से जो कुछ आवाज निकलेगी वह मालिक प्रेम से सुनेगा और उनकी आंखें खुल जायंगी। हृदय-परिवर्तन होने के लिए बाहर की परिस्थिति का दबाव पड़ेगा। कई लोग पूछते हैं कि हृदय-परिवर्तन से ही सारा काम होगा? मैं कहता हूं कि जी हां, होगा और यह हृदय-परिवर्तन दो तरीके से होगा। विचार समझा कर और परिस्थिति पैदा करके। जो मजदूरों का हित करना चाहते हैं उनसे मैं कहूंगा कि उन्हें मजदूरों के साथ काम करना चाहिए जिससे कि उनकी दिक्कतें जान सकेंगे और मजदूरों की प्रतिष्ठा भी बढ़ेगी। इस प्रकार मैंने यह एक तस्वीर आपके सामने रख दी है, जो मेरे मन में थी——मालिक और मजदूर दोनों मिलकर कैसे काम कर सकते हैं इस बारे में। इससे गरीब श्रीमान हो जायंगे। श्रीमानों का वजन अधिक है। वह घट जायगा और गरीबों का कम है वह बढ़ जायगा। मैंने जो काम हाथ में लिया है उससे सबका भला होगा। ऊंच-नीच गरीब-अमीर का भेद मिट जायेगा।

मजदूर बस्ती, किशनगढ़ (दिल्ली),
१८ नवम्बर १९५१

: ७ :

कांचन-मोह-मुक्ति

आज मैं भूमिदान-यज्ञ के बारे में कुछ विचार विशद करना चाहता हूं। दोपहर में व्यापारियों की एक सभा हुई थी। उसमें इस विषय का थोड़ा जिक्र किया था। उसमें एक भाई ने कुएं के लिए एक हजार रुपये का दान दिया था, वह मैंने स्वीकार नहीं किया। मैंने कहा, "मैं पैसा नहीं लेता। आप कुआं बनवाकर दे सकते हैं। अपनी जिम्मेदारी पर यह काम कीजियेगा। या जमीन खरीद कर भी दे सकते हैं। जो भी चाहें कहें। मुझे पैसा नहीं चाहिए।" मैंने उन्हें अपने हाथ बता दिये और कहा कि कोई पैंतीस हजार एकड़ भूमि अबतक मिल चुकी है। लेकिन आप देखते हैं कि मेरे हाथ को मिट्टी जरा भी चिपकी नहीं। जिन स्वच्छ हाथों से मैंने यात्रा आरम्भ की उन्हीं स्वच्छ हाथों से आज भी काम चला रहा हूं। मैं निर्लिप्त रहकर काम करना चाहता हूं और मैंने यह नया ही तरीका शुरू किया है। अगर मैं वित्त का संग्रह करने जाऊं तो कई सवाल खड़े होंगे। उनमें पड़कर मैं अपनी शक्ति क्षीण नहीं करना चाहता, उपनिषदों का मेरे सिर पर वरदहस्त है। उन्होंने स्पष्ट कहा है—"अमृतत्वस्यतु न आशा अस्ति वित्तेन" अर्थात् वित्त से और जो चाहें हो अमृतत्व की प्राप्ति नहीं होती। इस अनुभव-सिद्ध वचन पर मेरा विश्वास है। जमीन अपनी जगह छोड़ती नहीं। जिन दाताओं ने जमीन दी है, उनके पास ही वह पड़ी है। जब वह तकसीम होगी तब सारे गांववालों को बुलाकर सबकी राय से भूमिहीनों में बांट दी जायगी।

इस पर कलकत्ते के एक अखबार में एक भाई ने शंका उठाई है कि "विनोबाजी भूमि-दान लेते तो हैं, लेकिन कुछ लिखा-पढ़ी और कानूनी बाजाब्ता कार्रवाई भी करते हैं या नहीं? हजारों

एकड़ जमीन का वाक्दान मिले और हाथ में कुछ न आवे ऐसा तो नहीं होगा ?"

उस भाई के समाधान के लिए मै इतना कह दूं कि दानपत्र बाजाब्ता भरे जाते हैं, दो गवाहियां उस पर रहती हैं, फिर भी अगर किसी भाई को ऐसा मालूम हो कि उसने दानपत्र दबाव में भरा है या देने वाले को समाधान नहीं है तो उसे मुकर जाने की मेरी तरफ से पूरी इजाजत है और यदि मुझे यह पता चले कि वह दानपत्र दबाव से उसकी इच्छा के विरुद्ध भरा गया है और वह ऐसा कहे तो मै फौरन वह दानपत्र फाड़ डालूंगा।

यह सब मैं क्या कर रहा हूं ? मेरा उद्देश्य क्या है ? मैं परिवर्तन चाहता हूं। प्रथम हृदय-परिवर्तन, फिर जीवन-परिवर्तन, बाद में समाज-परिवर्तन। इस तरह से त्रिविध परिवर्तन, तिहेरा इन्कलाब, मेरे मन में है। यह इन्कलाब किसी भी तरह से, लोभ या लालच से या दबाव से दान प्राप्त हो तो होने वाला नहीं है। अगर किसी तरह से लोगों को नाखुश करके ज़बरन जमीन ही लेनी हो तो वह मेरा काम नहीं है। उसके लिए बहुत शूर पराक्रमी लोग पड़े हैं। वह काम मेरे हाथों नहीं हो सकता।

और आखिर पैसा मैं लूं भी क्यों, जबकि मेरा दृढ़ विश्वास हो गया है कि आज हिंदुस्तान में अगर सारी बरबादी किसी ने की है तो वह इस पैसे ने की है ? जब गांधी निधि जमा हो रही थी तो मैंने कुछ नहीं कहा। लेकिन जब कई बार मुझसे पूछा गया तो मैंने एक बार कहा कि "यह निधि आखिरी साबित हो।" हम गांधीजी के नाम पर पैसा क्यों मांगें ? श्रम-दान क्यों न स्वीकारें ? वास्तव में सरकार की सारी आमदनी गांधी निधि ही है, होनी चाहिए। लेकिन फिर भी पुराने संस्कारों का कुछ मोह होता है। मैं पृथक्करण नहीं करना चाहता। उस वक्त भी मुझे उसका बहुत मोह नहीं था। आज तो मुझे यह साफ दीख रहा है कि हमारी संस्थाएं, जो हमने एक जमाने में पैसे की सहायता से चलाईं, उस जमाने के लिए ठीक थीं; परन्तु अब इसके आगे

कार्यकर्ताओं का नित्य का जीवन श्रम-निष्ठ होना चाहिए। संस्थाएं भी खुद के परिश्रम से चलनी चाहिएं। या दूसरे से श्रम-दान मिले तो ही लेना चाहिए। यह अत्यन्त तीव्र वृत्ति मेरी है। इसे ही मैं 'कांचन-मोह-मुक्ति' या 'वित्त-छेद' कहता हूं।

यह 'कांचन-मोह-मुक्ति' का कार्यक्रम मैंने क्यों स्वीकारा है? इसलिए कि पैसा लफंगा है, झूठा है। जो आज एक, कल दूसरा, परसों तीसरा इस तरह बदलता रहता है उसे हम झूठा कहते हैं। पैसा ही झूठ बोलता है। आज रुपये के एक सेर चावल, कल डेढ़ सेर। दस साल पहले १२ सेर थे। इस तरह वह नित्य झूठ बोलता रहता है। कौन जाने किस रोज यह क्या बोलेगा? इस तरह इस झूठे पैसे को हम सिर्फ निबाह ही नहीं रहे हैं उसे अपना कारोबारी बना चुके हैं। अगर लफंगे को हम कारोबारी बनायें तो हम धोखे में नहीं आयेंगे तो और क्या होगा?

आजकल सब एक-दूसरे पर आरोप लगाते हैं। एक-दूसरे की निन्दा करते हैं। कहते हैं कि काला बाजार चल रहा है, रिश्वतखोरी हो रही है। अभी हमने यहां दिल्ली में पिछले दिनों एक भयानक दृश्य देखा। कांग्रेस के हजारों लोग यहां टिकट मांगने आये थे। राम लक्ष्मण की निन्दा करता था और लक्ष्मण राम की निन्दा करता था और कुल मिला कर दोनों की निन्दा देश ने सुनी। तो इसमें कांग्रेस ने क्या हासिल किया? देश की क्या इज्जत बढ़ी? क्या नैतिक शुद्धि हुई? ये सब मेरे ध्यान में नहीं आता। लेकिन इसके लिए मैं किसी को दोष नहीं देता। जिस ढंग से छानबीन का काम किया गया है उससे कांग्रेस में कुछ-न-कुछ अच्छाई आई होगी, कुछ-न-कुछ हालत सुधरी होगी, ऐसा मान लेना मेरे लिए नम्रता है और जिन लोगों ने यह काम किया है उनके लिए मेरे हृदय में आदर है। इसलिए मैं दूसरा कुछ मान नहीं सकता। लेकिन फिर भी एक दूसरे की जो निन्दा देश भर में हो रही है और हर कोई दूसरे को बदमाश कह रहा है तो सोचने की बात है कि क्या सारा-का-सारा देश कभी बुरा बदमाश बन

सकता है ? यह बिल्कुल गलत धारणा है। मैंने आज ही बातचीत में कहा है कि मैं वर्धा से यहां तक सैकड़ों मील चल कर आया, हजारों आदमियों से मिला, परन्तु मुझे एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं मिला, जिसे मैं दुर्जन कह सकूं। इसका यह अर्थ नहीं कि एक में भी दोष नहीं था। दोष तो सब में होते हैं। पहले तो मुझ में ही मिलेंगे। इसलिए दोष के दर्शन का आरम्भ तो मुझ से ही हुआ, परन्तु जिसे हम दुर्जन कहेंगे ऐसा कोई व्यक्ति मुझे नहीं मिला। मेरी आत्मा मुझे निस्सन्देह कह रही है कि हिन्दुस्तान की आत्मा पवित्र है। यही देखिये न कि चार साल पहले हिन्दू-मुसलमानों की क्या हालत थी। आज भी जातीयता की भावना खतम नहीं हो गई है। फिर भी उस जमाने में क्या हालत थी ? हमारे ऊंचे-से-ऊंचे नेताओं के बारे में मुसलमान लोगों के मन शंकाशील थे। उसी प्रकार मुसलमान नेताओं के बारे में हिन्दुओं के दिल भी शंकाशील थे। सरदार वल्लभभाई पटेल के बारे में अच्छे-से-अच्छे मुसलमान भी क्या विचार रखते थे और मौलाना आजाद के विषय में अच्छे-से-अच्छे हिन्दू क्या सोचते थे, मैं जानता हूं। लेकिन आज वह सब नहीं है। उस जमाने में लोग बुरे थे और आज अच्छे हो गये, ऐसी बात तो नहीं, परन्तु उस समय लोग एक प्रवाह में आ गये थे, प्रवाहपतित हो गये थे। भले-बुरे में पहचान करना उन्हें कठिन हो गया था, लेकिन जब हवा बदल गई तो लोग रास्ते पर आने लगे।

इसी तरह आज जिधर देखो उधर लोग पाप-ही-पाप करते हुए नजर आ रहे हैं। द्रव्य का लोभ बढ़ रहा है। इसका कारण क्या है ? कारण यह नहीं कि हमारा हृदय बिगड़ा है। कारण यह है कि आर्थिक ढांचा बिगड़ गया है। जाने-न-जाने लोग उस प्रवाह में बहे जा रहे हैं। यह निन्दा का विषय नहीं, घृणा का भी नहीं, दया का विषय है और दया के साथ-साथ सोचने का भी।

मैंने इस पर बहुत सोचा है। नतीजा यही निकला कि हमने एक लफंगे को—पैसे को—कारोबारी बनाया है। पैसे के सिवा

हम बात नहीं करते। किसान भी पैसे की बात करता है। उसके बिना उसे कोई चारा नहीं दीखता। खेती करने वाला मजदूर, मध्यमवर्गी लोग, व्यापारी और सभी पैसे के पीछे पड़े हैं। सरकार को भी पैसा चाहिए। इस तरह हर कोई पैसे की प्रतिष्ठा बढ़ा रहा है। जिस पैसे को खुद की प्रतिष्ठा नहीं, उसे कारोबारी बना दिया गया है। मैं बहुत बार मिसाल देता हूं कि हमारी सरकार तीस साल पहले जिस खेत से दो रुपया लगान वसूल करती थी, आज भी दो ही रुपया वसूल करती है, जबकि उस दो रुपयों की कीमत उस समय २४सेर गेहूं की थी और आज ४-५ सेर की होगी। फिर भी हम मानते हैं कि यह सेटिलमेंट है। वास्तव में 'सेटिल' शब्द के साथ इस परिणाम का कोई सम्बन्ध नहीं। यह बिलकुल 'अनसेटिल्ड'—अस्थिर वस्तु—है। इसके बजाय सरकार उस वक्त अनाज लेती तो आज भी उतना ही लेती और उसकी यह आज की-सी हालत नहीं होती।

नागपुर में अंधों की एक पाठशाला है। उसके संचालकगण मेरे पास आये और बताया कि वह बहुत आर्थिक कष्ट में हैं। पाठशाला तीस साल से चल रही है। सरकार से मदद मिलती है, लेकिन उन दिनों उस मदद से उनका खर्चा निभ जाता था, अब नहीं निभता। पूछने पर उन्होंने बताया कि जो रकम तीस साल पहले मिलती थी वही आज भी मिलती है। आज उनका खर्चा नहीं चलता है। चल भी कैसे सकता है? मैंने विनोद से कहा, "भाइयो, अंधों का मामला है। पाठशाला भी अंधों की ही है। देने वाले भी अंधे हैं।"

क्या अंधेर है कि किसान से लगान अनाज में नहीं लेते और बोलते हैं कि अनाज बेचकर पैसा दो, जिसका स्थिर मूल्य नहीं! अनाज का भाव तो जो पहले था वही है। उसमें जो पोषकतत्व सौ साल पहले थे वही आज भी है। उसका मूल्य न घटा, न बढ़ा। इस तरह जिसका स्थिर मूल्य है उसे अस्थिर मूल्यों में व्यवहार करने के लिए कहते हैं। मैं यह समझ नहीं सका। मैंने हिंदुस्तान के बड़े-

बड़े अर्थशास्त्रियों से पूछा कि इसका क्या राज़ है। परन्तु कोई भेद नहीं मिला। कुछ लोग अनाज-संग्रह की मुश्किलें बताते हैं। उधर प्रोक्योर तो करना ही पड़ता है। उसमें कितनी तकलीफ होती है। तेलंगाना में मैंने देखा है कि लोगों का आधा दुःख तो इस प्रोक्योरमेंट के कारण ही है। गांव में गाड़ियां पड़ी रहती हैं। सख्ती से अनाज लिया जाता है। रिश्वतवालों को छोड़ देते हैं। कुछ को ज्यादा देना पड़ता है। लोगों को कानून का भी ठीक ज्ञान नहीं। जिस तरह उनसे मांगा जाता है, उस तरह देना पड़ता है। वह सब बड़ा दुखदायी है। जब मैं अनाज में लगान की बात कहता हूं तो वे कहते हैं कि हमें व्यवस्था करनी पड़ेगी। बड़ी झंझट होगी। लेकिन यह सारा धन-मोह है। द्रव्य-मोह है। वित्त-मोह है। हर शख्स इस मोह में फंसा हुआ है। इसलिए मैंने पैसा न लेने का दृढ़ निश्चय किया है। मैं जानता हूं कि पैसा कितना व्यापक है। एक भाई ने लिखा था कि "पैसे को टाल सकते है? यह वित्त-छेद का विचार व्यर्थ है। पैसा आज परमेश्वर की तरह व्यापक हो गया है।" उसने सच कहा। कारण यह है कि कांचन-मुक्ति का काम आसान नहीं है। वह बहुत कठिन काम है। उसी तरह भूमि-दान-यज्ञ का काम भी अत्यन्त कठिन है और यह समझकर ही मैंने उसे उठाया है। मेरा एक स्वभाव ही बन गया है कि कठिन काम करने के लिए मन में उत्साह पैदा होता है। आसान काम के लिए उत्साह होता ही नहीं। इसलिए अब जवान लोग मुझे पूछते हैं तो मैं कहता हूं कि भाइयो, अपने जीवन के लिए पैसे का उपयोग नहीं करना है। ग्रामों में जाओ, पैसे का छेद करो। गांववालों को पैसे से मुक्त करो। यह बात केवल अपने जीवन तक ही सीमित मत समझो। संस्था तक भी सामित मत समझो। बल्कि समाज का एक बड़ा हिस्सा पैसे से मुक्त होना चाहिए। तभी जीवन आनन्दमय हो सकता है और हमारा देश इस बुरी हवा से बच सकता है। यदि हम पैसे को बिल्कुल नहीं टाल सकते तो हम पैसे का कम-से-

कम उपयोग करें। वैसा वातावरण तैयार करो। तभी हमारा और देश का जीवन आनन्दमय होगा।

राजघाट, १९ नवम्बर १९५१

: ८ :

खादी का विचार

कल मैंने कहा था कि जिसको आज 'मनी इकॉनमी' यानी पैसे पर आधारित समाज-रचना कहते हैं उसका मै खंडन करना चाहता हूं। और उसके बदले में श्रम पर आधारित समाज-रचना कायम करना चाहता हूं। यह विचार मैंने आज तुलसीदास जी के भजन में सुना। "मै भरोसे अपने राम के और देव सब दाम के। कछु नहीं काम के।" तो यह जो दाम के देव उनकी प्रतिष्ठा हम नही चाहते। बल्कि अपने राम के भरोसे अपने देश की रचना करना चाहते हैं। चाहते तो यह हैं कि सारे देश की यानी सारे शहरों और देहातों की रचना वैसी हो; लेकिन देहातों को तो हम पैसे से प्रथम छुड़ा लेना चाहते हैं, और शहर अगर पूरी तरह न भी बदलें, लेकिन ग्रामों के साथ सहकार करें, और उनके अनुकूल बन जायं, तो भी बहुत है।

तो इस तरह यह समाज-रचना बदलने का काम हम शीघ्र और श्रम के आधार पर करना चाहते हैं। जब हम ऐसा कहते हैं तब लोग समझते हैं कि हम पुरानी बारटर की व्यवस्था लाना चाहते हैं। लेकिन मुझे बारटर की व्यवस्था मक्सूद नहीं है। बारटर एक बहुत प्रथमावस्था में शुरू हुआ। उसमें कई अड़चनें हैं। मैं उसे फिर से नहीं लाना चाहता। बल्कि मैं तो पेपर-करेन्सी ही पसन्द करता हूं। गांव के लिए मै ऐसी करेन्सी नहीं चाहता जिस पर आज की तरह पैसे के अंक छपे हों, बल्कि श्रम के घंटों के अंक लिखे हों, और वह करेन्सी किसी सुलतान या बादशाह की मर्जी से नासिक के प्रेस में नहीं छपी हुई होगी, बल्कि जितने

घंटे प्रत्यक्ष परिश्रम किया गया हो, उसको बताने वाली करेन्सी होगी और उस कागज पर जो नकद परिश्रम हुआ होगा वह लिखा जायगा। जो उधार परिश्रम होगा वह नहीं लिखा जायगा। इस तरह का चलन चलेगा और बाकी गांव की उपयोग की चीजें जिनका कच्चा माल गांव में ही उपलब्ध है, गांव में ही बनेंगी। यह हमारी योजना है। इसमें ट्रान्सपोर्ट (यातायात) आदि का सवाल अपने आप हल हो जाता है। और सारी व्यवस्था विकेन्द्रित पद्धति से होगी जैसे भगवान ने की है। भगवान ने अकल सबको बांटी है। न बांटी होती और कहीं दिल्ली के किसी बैंक में सुरक्षित कर रखी होती तो आप उस बेचारे भगवान को मोटर और हवाई जहाज में दौड़-धूप करते और पसीना-पसीना होते देखते। लेकिन वह आज तो निश्चिन्त होकर क्षीर-सागर में सो रहा है, यहां तक कि लोग कहते हैं कि भगवान है ही नहीं। उसने ऐसी विकेन्द्रित व्यवस्था कायम की कि उसके सिर पर से सत्ता का सारा बोझ उतर गया।

वही उदाहरण लेकर हम हर गांव को आत्मनिर्भर बनाना चाहते हैं, ग्राम-राज्य कायम करना चाहते हैं, जिसमें से गर्व का प्रतीक 'ग' निकाल दें तो राम-राज्य बन जाता है। यही हमारी कल्पना है। लेकिन आजकल शहर वालों की सारी अकल, उनका सारा पुरुषार्थ और पराक्रम परदेशी चीजों को रोकने में नहीं खर्च हो रहे हैं, बल्कि देहात की चीजों को देहात के बाहर यंत्रों से बनाने में और इस तरह देहात के उद्योगों को खतम करने में खर्च हो रहे हैं। होना तो यह चाहिए था कि देहात के कच्चे माल का पक्का माल देहात में ही बने, जिससे परदेशी माल का आयात रुक सके। इस तरह होता तो गांव और शहर का सहकार होता, दोनों मालामाल होते, दोनों तरक्की करते, दोनों आराम से रहते, लेकिन ऐसा नहीं हो रहा है। गांव की सेवा के नाम से शहरों में कारखाने खोले जाते हैं, जिससे गांव का एक-एक उद्योग खत्म हो जाता है। दाल बनाने के कारखाने शहर में खोलते हैं

और हमारे मंत्री अपना कर्तव्य समझते हैं कि उनका उद्घाटन करने जायं। मैं तो यह सब देख कर हैरान होकर रह जाता हूं। मैं नहीं समझता कि मंत्रियों पर यह जिम्मेदारी किस ने लादी है। उन्हें लगता है कि इससे माल सस्ता होगा। यह सारा सस्ते और महंगे का विचार ही पैसे की कोख से निकला है। इसलिए हमें इसमें से मुक्त होना है। और मेरा मानना है कि हमारा देश तभी उन्नत होगा। गांधीजी तीस साल से हमें समझाते आये। उनके नज़दीक जो लोग थे उन सबने गांधीजी पर पूरी श्रद्धा तो रखी, फिर भी उनके विचारों को बिना सोचे-विचारे पूरी तरह माना, ऐसा नहीं है। मुझे उनके आध्यात्मिक विचार तो फौरन जंच गये, परन्तु आर्थिक विचार पूरी कसौटी पर कसे बिना मैं एकदम स्वीकार न कर सका और जब मेरा यह निश्चय हुआ कि उनके बिना हिन्दुस्तान का उद्धार नहीं हो सकता, तभी मैंने इसे स्वीकार किया।

तो जब मैं यहां प्लानिंग कमीशन के साथ बैठा था तो चर्चा में मैंने कहा कि इतना तो करो कि जिसका कच्चा माल गांव में होता है और जिसकी उनको आवश्यकता है, उसका पक्का माल गांव में ही बने। क्यों उन चीजों को वहां नहीं होने देते हो? उन्हें उतना संरक्षण क्यों नहीं दिया जा सकता, जबकि हमारी इतनी श्रमशक्ति वहां पड़ी है और यंत्र-शक्ति हमारे पास उतनी नहीं है? आखिर वे लोग कबूल तो कर लेते हैं कि हां, ठीक है सबको काम देना चाहिए, लेकिन जहां खादी का सवाल आता है और जहां कपास होती है वहीं कपड़ा बने और वहीं वह इस्तेमाल हो, ऐसी बात आती है, तब वे हिचकिचाते हैं। इस जमाने के अर्थ-शास्त्रज्ञ—मैं नहीं कहता कि पूंजीपतियों के ज़ेरअसर हैं और उनके प्रभाव से बोलते हैं, परन्तु यह तो कहूंगा कि उनके विचार पूंजीवादी हैं। उत्पादन के मामले में कम्यूनिस्ट और पूंजीवादी भाई-भाई हैं। सिर्फ वितरण में उनके भिन्न विचार हैं। इसलिए जहां तक उत्पादन का सवाल है, वे पूंजीपतियों के पृष्ठ-पोषक हैं और जाने-न-जाने

उन्हींकी दिशा में वे बढ़ रहे हैं।

नेशनल प्लानिंग का यह गृहीत-कृत्य यानी पास्टुलेट होना चाहिए कि हरेक मनुष्य को आज ही पूर्ण काम दे सकते हैं और देना चाहिए। जिन औजारों से दे सकते हैं, दें। लेकिन एफीशेंसी के नाम पर अगर चन्द लोगों को ही काम दिया जाता है और सबको नहीं, तो वह नेशनल प्लानिंग नहीं, पार्शियल प्लानिंग होगा। अगर सारे देश का ज़िम्मा उठाना है और आज ही उठाना है और मेरे मन में इसमें सन्देह नहीं कि उठाना चाहिए तो इस विचार की सिद्धि के तौर पर ही नहीं, बल्कि पास्टुलेट के तौर पर यह मानना होगा, कि हम सब को काम दे सकते हैं। और मैं मानता हूं कि अगर हमारे पास जो छोटे-छोटे औजार उपलब्ध हैं, उनकी सहायता से काम लेना स्वीकार करें तो आज ही सबको काम दे सकते हैं।

लेकिन एक तरफ से वे कहते हैं कि काम देना चाहिए और दूसरी तरफ कहते हैं कि खादी की क्या जरूरत है ? मैं जहां-जहां जाता हूं वहां भी लोग पूछते हैं कि अब स्वराज के बाद खादी की आवश्यकता है क्या ? तो मैं पूछता हूं कि क्या आये हुए स्वराज को खोना है ? जब मैं खादी की बात करता हूं तो लोग कहते हैं कि अब स्वराज की सरकार है, फिर क्यों नहीं वे खादी का कार्यक्रम अपनाते।

सरकार ने तो खादी को अपनाया नहीं है, लेकिन मैं देखता हूं कि लोग भी आज उसे अपनाने को तैयार नहीं हैं। मुझे इसमें आश्चर्य नहीं होता, क्योंकि आज चर्खा सिर्फ राहत देने वाला नहीं रहा है, वह हमारी बगावत का झंडा बन गया है। जब मैं घंटों खेती करने लगा तो एक अखबार ने मेरी प्रशंसा करते हुए लिखा कि "विनोबा खादी का काम छोड़ कर खेती की उपासना कर रहे हैं, मुबारक है उन्हें !" तो मैंने इसका जवाब देते हुए लिखा कि "आपका कहना गलत है और मुझे यह प्रशंसा मान्य नहीं है। मैं दिन भर खेती करता हूं, यह ठीक है। यह बहुत महत्व का काम

है और आजकल मेरा मुख्य काम खेती है। परन्तु कताई को अब अधिक पवित्र स्थान दिया है, उपासना में उसे सम्मिलित कर लिया गया है, अब मैं प्रार्थना में कातने लगा हूं। खेती तो हर हालत में करनी ही है, परन्तु चर्खा तो जैसा मैंने अभी कहा, बगावत की निशानी है। वही चर्खा हमारे झंडे में मौजूद है, यद्यपि दिखाई नहीं देता। उस बारे में पूछा गया तो पंडित नेहरू ने कहा कि वह पुराना चर्खा ही है। चित्र की सहूलियत की दृष्टि से उसमें कुछ फर्क किया गया है और प्राचीन इतिहास भी उसमें सम्मिलित कर लिया गया है।"

जब मैं पूछता हूं कि चर्खे के बदले क्या काम दोगे तो ये लोग कहते हैं कि रास्ते बनवायेंगे। सवाल यह है कि कामों में कुछ नित्य काम होते हैं कुछ नैमित्तिक होते हैं। आखिर रास्ते कब तक बनवायेंगे ? एक बरस, दो बरस। फिर तो दुरुस्ती का काम रह जाता है। लेकिन कपड़ा तो नित्य आवश्यकता की वस्तु है। मानव-समाज जिन्दा है और जब तक वह नंगा रहना पसंद नहीं करता तबतक कपड़े की आवश्यकता रहेगी ही। इसलिए वह सड़कों के काम की तरह नैमित्तिक नहीं, नित्य का काम है। वह नित्य का काम आप हमसे छीन लेंगे और बदले में मिल का कपड़ा देंगे। फिर भी मैं बहस नहीं करूंगा और न आग्रह ही। आज आप इतनी प्रतिज्ञा कीजिये कि आप आज ही हम सबको काम देने के लिए तैयार है, चाहे जिन औजारों से दें। मैं मानता हूं कि जब इस संबंध में सोचने बैठ जायंगे तो चर्खे के सिवा और कोई चीज आपको नजर नहीं आयेगी। गांधीजी की यह दीर्घ दृष्टि थी। ऋषि के समान उन्हें दर्शन हुआ था। इसलिए उन्होंने कहा कि मेरा जन्म-दिन मेरा नहीं, चर्खे का जन्म-दिन है। उनकी और बातें याद रहें या न रहें, परन्तु चर्खे का स्मरण नित्य रहने वाला है। परन्तु यह बात हमेशा याद रहने वाली है कि इस मनुष्य ने ऐसी बात बताई जिससे हमें दूसरों की ओर ताकना न पड़े। यह नहीं कि बाहर से कुछ खरीदेंगे ही नहीं। लेकिन रोज की आवश्यकताओं

की चीजें हम खुद पैदा करेंगे। उसका नतीजा यह होगा कि पैसा भी आज की तरह अस्थिर नहीं रहेगा। उसका उपयोग सीमित रहेगा और आज जो आपत्ति उपस्थित हो गई है वह नहीं रहेगी।

यह सारी दृष्टि खादी में पड़ी है और ऐसा मज़बूत विचार है, जिसे कोई हिला नहीं सकता।

तेलंगाना में मैंने गांव-गांव में देखा और सोशलिस्टों से भी पूछा कि क्या चर्खे की बजाय कोई और चीज बता सकते हो? उन्होंने कहा कि नहीं।

जयप्रकाशनारायण वर्धा आये थे। गांव के अर्थ-शास्त्र के बारे में चर्चा हुई। मैंने कहा कि मैं एफीशिएंसी और क्षमता के विरुद्ध नहीं हूं। लेकिन सबको काम देने के खयाल से जरूरी है कि जो औजार हमारे पास मौजूद हैं, उनसे काम लिया जाय और फिर उनमें आवश्यक सुधार करते जायं। यद्यपि जयप्रकाश प्रगत विचार वाले माने जाते हैं, उन्होंने यह विचार मान्य किया और हर कोई विचारवान व्यक्ति ऐसा ही करेगा, बशर्तेकि उसकी मति मोह-ग्रस्त न हो। स्वराज्य के बाद चर्खे का स्थान कम नहीं, बल्कि ज्यादा है, जरूरत सिर्फ पहचानने की है।

राजघाट, २० नवम्बर १९५१

: ९ :

भूदान की मर्यादा

आप लोगों ने सुना ही है कि देशबन्धु गुप्त जो दिल्ली के अनन्य सेवक थे और जो सार्वजनिक सेवा के काम पर हवाई जहाज से कलकत्ते जा रहे थे, दुर्घटनावश परलोकवासी हो गये। ऐसे मौके पर उनके कुटुम्बीजनों के साथ मैं अपनी हमदर्दी प्रकट करता हूं। मृत्यु का शोक नहीं करना चाहिए, ऐसी आज्ञा हमारे शास्त्रकारों ने दी है। फिर भी जब इस तरह की अचानक मृत्यु होती है तो कुछ शोक जरूर होता ही है। लेकिन केवल शोक करने

से कर्तव्य पूरा नहीं होता। ऐसी घटना से सबक लेना चाहिए। क्या सबक लेना चाहिए यह अंग्रेज लेखक शेक्सपियर ने थोड़े से शब्दों में बहुत अच्छी तरह बताया है। उसने कहा कि अगर हमें पता होता कि हमारे मित्र की मृत्यु आज रात को होनेवाली है तो आज सवेरे हमने जो झगड़ा किया, बहुत भली-बुरी बातें कहीं, कटु वचन कहे, नहीं कहते। स्पष्ट है कि यदि हम मनुष्यों को ऐसा पता होता तो कटु वचन कभी नहीं बोलते। परमेश्वर ने जो दिन हमें दिया है वही हम सब का आखिरी दिन भी हो सकता है। इसलिए हमारा कर्तव्य है कि सबसे प्यार करें, मधुर वाणी बोलें और सत्यनिष्ठा से जितनी सेवा हो सकती है, करें। यही सबक ऐसी घटना से सीखना चाहिए।

शेक्सपीयर का वह वचन मुझे आज याद आ गया। "ग्रहीत इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत्" ऐसा शास्त्र-वचन है। धर्म का आचरण, कर्तव्य का आचरण यों समझ कर अत्यन्त तीव्रता से करना चाहिए कि मृत्यु ने हमारी चोटी पकड़ ली है। इस तरह अगर हम जागृत रहें तो हमारा जीवन सार्थक होगा। मृत्यु का उपयोग जीवन सार्थक बनाने के लिए ही हो सकता है और उसी तरह उसका उपयोग करना चाहिए।

कल एक भाई मेरे पास आये, अपनी पत्नी के साथ। वे दूर से—मध्य प्रदेश से—आये हुए हैं। जमीन देने के लिये उनके पास ५० एकड़ भूमि थी। उसके नम्बर और नक्शा वगैरा ले कर आये थे। वे कहने लगे, "मैं सारी जमीन देना चाहता हूं।" मैंने उनसे पूछा कि क्या आपका और कोई धन्धा है, जीविका का साधन है? तो उन्होंने कहा, "नहीं।" मैंने कहा कि तब कुछ हिस्सा दीजिये। उन्होंने कहा कि जितना आप रखना चाहते हैं रखिये। उनके तीन बच्चे हैं तो मैं चौथा बन गया और १२॥ एकड़ जमीन ले ली। बाकी उनके पास रहने दी। मुझसे कोई व्यक्ति पूछ सकता है कि अगर किसी के पास ५० एकड़ जमीन न हो तो आप उससे १२॥ एकड़ लेते हैं। परन्तु ३७॥ एकड़ ही हो और वह भी दान देना

चाहे तो ऐसे शख्स से आप कितनी जमीन लेंगे। मेरा जवाब है कि उससे भी १०-१२ एकड़ तो जरूर लूगा। इस तरह मैंने ली भी है, क्योंकि उसके पास २५ एकड़ बच जाती है और उतनी जमीन से कोई धन्धा न होने पर भी गुजारा कर सकता है। इतना ही क्यों, मैने पांच एकड़ वाले किसान से भी, जिसका और कोई धन्धा नहीं था, आधा एकड़ जमीन ले ली है। तो मुझसे कोई पूछ सकता है कि इधर तो पांच एकड़ वाले से भी आधा एकड़ ले लेते हैं, उधर ५० वालों से एक चौथाई ले कर ही क्यों शांत हो जाते हैं ?

मैं यह क्या कर रहा हूं समझने की जरूरत है। आखिर जमीन की आर्थिक इकाई (इकनामिक यूनिट) कुछ होनी चाहिए। वह क्या हो ? जमीन किसके पास कितनी रहे ? मेरा कहना है कि यह सब सोच कर तय करना होगा और उस सम्बन्ध में सोचा जा सकता है। लेकिन यह सब मेरा काम नहीं है। मैंने अपने काम के बारे में सोचा है कि मैं तो एक पारमार्थिक काम ही कर सकता हूं। देशबन्धु गुप्त आज चले गये। कौन कह सकता है कि कल मैं नहीं जाने वाला हूं। यह भी नहीं है कि देश के सामने ऐसा भारी मसला है जिसके हल की जिम्मेदारी मुझ पर ही हो। राम आये, लोक-संग्रह किया, फिर भी लोक-संग्रह का काम तो बचा ही है। कृष्ण आये। उन्होंने भी लोक-संग्रह का काम किया, फिर भी वह बच रहा। हमें तो निमित्त मात्र बनकर अपना काम करना चाहिए। मैं तो एक पारमार्थिक हवा पैदा करना चाहता हूं। परमार्थ ही सच्चा अर्थशास्त्र है। जो लोग अर्थशास्त्र को गलत समझते हैं उन्हें मैं समझाना चाहता हूं। अगर वे समझ जायंगे तो वे स्वयंभू महादेव बन जायंगे और मेरे प्रचारक हो जायंगे। मैंने अपना कोई संगठन नहीं बनाया है। और न बनाना चाहता हूं। वे लोग जो इस भू-दान-यज्ञ में त्याग कर रहे हैं, उनके त्याग से ही मेरे काम का प्रचार हो जाता है।

अग्नि नहीं सोचता कि मैं सुलग रहा हूं और कोई भला मनुष्य

चूल्हे पर बर्तन नहीं रख रहा है, उसमें पानी नहीं डाल रहा है, तो चावल कैसे पकेगा ? अग्नि तो यही सोचता है कि मैं तो सुलग गया। जिसने मुझे सुलगने की बुद्धि दी है, वह दूसरों को मेरा उपयोग करने की भी बुद्धि देगा। सूर्यनारायण यह नहीं सोचता कि मेरे निकलने पर कौन सोता रहेगा और कौन जागता रहेगा। वह तो हरेक के द्वार पर पहुंच जाता है। अगर किसी ने दरवाजा नहीं खोला तो वह धक्का नहीं देता है और यह भी नहीं सोचता कि अगर कोई शख्स सो रहा है तो मैं उसके दरवाजे पर क्यों जाऊं ? वह तो अपनी किरणें सबके लिए खोल देता है। जितना जिसको ग्रहण करना हो कर ले। सूर्य की किरणें वहां जाती है जहां का दरवाजा खुला हो। यदि किसी का दरवाजा बन्द है तो वहां वे नहीं जातीं, थोड़ा-सा खुला है तो थोड़ी अंदर जाती हैं और पूरा खुला है तो पूरी अन्दर जाती हैं। इस तरह सूर्य अपनी मर्यादा समझता है और मैं भी अपनी मर्यादा समझता हूं। और यही चाहता हूं कि हर शख्स को यह स्फूर्ति हो कि यदि उसके कुटुम्ब में तीन भाई हैं तो इस अव्यक्त को चौथा मान ले। और अपनी शक्ति अल्प हो तो इस चौथे को अल्प दे, ज्यादा हो, तो ज्यादा दे। मैं तो ५० एकड़ वाले से १२॥, २५ वाले से ६॥ और पांच वाले से आधा ले लेता हूं। इस तरह जो जितना देता है, उससे जरूर लेता ही रहता हूं। हो सकता है कि किसी को यह असंगत मालूम हो, कोई इसे पागलपन भी कहे, लेकिन मुझे यह सुसंगत और ठीक दीखता है। इसका नतीजा क्या होगा, क्या नहीं, यह सोचना मेरा काम नहीं है। मैं मानव-हृदय में परिवर्तन चाहता हूं। लोग पूछते हैं कि क्या इस तरह परिवर्तन होगा ? मैं ज्योतिषी नहीं, इसलिए नहीं कह सकता कि क्या होगा और क्या नहीं होगा, लेकिन अगर लोक-मानस इस तरह का बन गया तो देश का कल्याण होगा, ऐसा मैं समझता हूं। नहीं बना तो कल्याण नहीं होगा। यह सब समझाना मेरा काम है। मैं कोई अशास्त्रीय विचार नहीं समझाता हूं।

मैं नहीं समझता कि इस तरह से लोग जमीन क्यों नहीं देंगे।

अगर हम लोगों को समझा न सकेंगे यह बात दूसरी है, लेकिन हमें समझाना चाहिए और मेरा विश्वास है कि समझाने से लोग समझ जायंगे और देने लगेंगे, क्योंकि वे जड़ नहीं हैं। वे भी मानव हैं और मैं भी मानव हूं। मैं ही ऐसा कौन अलौकिक पुरुष हूं कि जो विचार मुझे सूझता है और समझता है वह दूसरों को न सूझे या न समझे। जैसी प्रेरणा मुझे होती है, वैसी औरों को भी होगी और परमेश्वर चाहे तो जरूर होगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

राजघाट, २१ नवम्बर १९५१

: १० :

अहिंसक कानून

सुबह एक भाई आये और बहुत उत्साह से कहने लगे कि आपका कार्यक्रम अच्छा है, परन्तु कब पूरा होगा यह नहीं कह सकते। कानून से जल्द-से-जल्द पूरा हो सकता है और हो जाना चाहिए। मैंने उन्हें समझा दिया कि मेरी योजना अहिंसा की योजना है। अहिंसा की योजना में कानून नहीं आ सकता, ऐसी बात नहीं है, लेकिन पहले लोकमत प्रकट होना चाहिए। उसके लिए पहले हवा तैयार की जाती है और जब बहुतों की हार्दिक सम्मति प्राप्त हो जाती है, चाहे कुछ लोग उसका विरोध क्यों न करें, फिर भी विचार की मान्यता हो तो कानून मदद के लिए आ सकता है। और कानून तो करना भी चाहिए। यह सब मेरी योजना में है। साम्यवादी भी कानून चाहते हैं। उनकी योजना में भी कानून होता है, लेकिन वे पहले कत्ल से आरभ करते हैं और फिर कानून बनाते हैं। तो फिर उस कानून पर कत्ल का रंग चढ़ जाता है। मेरी योजना में भी अन्त में कानून है। लेकिन आरंभ करुणा से होता है और जब हरेक हृदय में यह बात कबूल हो जाती है कि जो चीज कही जा रही है, उसमें न्याय है औरअभी जो हालत है उसमें अन्याय और हानि है, तब मेरा काम पूरा हो जाता है। इस

तरह से यह काम करुणा से प्रारंभ होता है, बुद्धि से समझ में आता है और आखिर कानून में इसकी परिसमाप्ति होती है। यह है इसकी अहिंसात्मक प्रक्रिया।

बात असल यह है कि आज जो परिस्थिति है, उसमें बचाव की कोई उम्मीद नहीं, क्योंकि जमीन पर अगर मालिकी है तो सबकी है और अगर नहीं है तो किसी की नहीं है। मैं कई बार दुहरा चुका हूं कि जिस तरह हवा, पानी, प्रकाश ईश्वर की देन हैं और उसमें कोई भेदभाव नहीं किया जाता उसी तरह जमीन भी ईश्वर की देन है। इस विचार को हिंदी के महाकवि मैथिलीशरण गुप्त ने एक कविता में बहुत अच्छे ढंग से प्रकट किया है।

कुछ लोगों का ख़याल है कि "पहले मैंने दान मांगा और अब हक की बात करने लगा हूं" यह ठीक नहीं है। मैं तो पहले से ही न्याय की बात करता रहा हूं। न्याय यानी कानूनी न्याय नहीं, ईश्वरीय न्याय। मैंने 'ग्रामर ऑव पालिटिक्स' (स्वराज्य शास्त्र) नामक एक छोटी-सी किताब लिखी है*, उसमें यह बात स्पष्ट कर दी गई है। बीस साल पहले जेल में मैंने साने गुरुजी को बताया था कि हमें कानून से जमीन की तकसीम करनी होगी। मुझे याद नहीं था कि बीस साल पहले मैंने यह बात उनसे कही थी, लेकिन किशोरलालभाई ने याद दिलाई कि साने गुरुजी ने यह बात लिख रखी है।

एक कानून वह होता है जो जबरदस्ती व हिंसा का प्रतिनिधि होता है। दूसरा वह होता है जो अहिंसा का प्रतिनिधि होता है। मैं तो अहिंसक कानून का प्रतिनिधि हूं और इसी के वास्ते भूमिका तैयार करना चाहता हूं। ऐसे काम में आरंभ में प्रचार की गति धीमी होती है। अहिंसा के तरीके में ऐसा होता है, लेकिन देखते-देखते हवा में बात फैल जाती है। 'अब तो बात फैल गई जानत सब कोई' वाली बात हो जाती है। और जब फैल जाती है तो काम होने

*'सस्ता साहित्य मंडल' से प्रकाशित

में देर नहीं लगती। यदि हम सब मिल कर काम करने लगें तो इस काम में पांच-पचास साल लगाने की जरूरत नहीं, एक साल में भी हो सकता है। हमारा पुरुषार्थ कितना है, समझाने की शक्ति कितनी है,त्याग-शक्ति कितनी है,इस सब पर यह निर्भर है। समझाने से जितनी आसानी से काम बनता है,उतना दबाव से नहीं। मैं कई बार कह चुका हूं कि दबाव से मुझे कोई दान नहीं चाहिए। मुझे कलुषित दान नही चाहिए, शुद्ध दान चाहिए और जितना भी दान मुझे अब तक मिला है, उसमें से कोई भी दान किसी प्रकार के दबाव से नहीं मिला। मुझे पूरा विश्वास है कि यदि हम किसी का बुरा न चाहें, सबका भला चाहें, सबके लिए परिपूर्ण भाव रक्खें और किसी के स्वार्थ-हित की दृष्टि से नहीं, सर्वोदय की दृष्टि से देखें तो जैसी हम चाहते हैं, हवा जल्दी फैलेगी और जो हवा फैलेगी उससे भी हमारा काम चल जायगा।

आज का कानून तो इतना ही कर सकता है कि अगर जमींदार से जमीन लेनी है तो मुआवज़ा देकर ले सकते हैं। यह मुआवजे की बात जिस हालत के लिए ठीक हो, होगी, लेकिन अहिंसा के लिए तो यह जरूरी नहीं है कि मुआवजा लेने वाले को लेना ही चाहिए। बात सिर्फ इतनी है कि बड़े जमींदार, मालगुजार व काश्तकार हमारे भाई हैं और उन्हें इतना मिल जाना चाहिए कि उनका काम चलता रहे। अगर किसी दस हज़ार एकड़ वाले भाई को मुआवजा नहीं दिया जाता है तो वह अहिंसा के खिलाफ बात हुई ऐसा नहीं है। लेकिन जिस हालत में हम आज हैं उस हालत में जैसा कानून किया गया है और किया जा रहा है, उससे अधिक कुछ नहीं किया जा सकता था। मैं बड़े काश्तकारों, जमींदारों, मालगुजारों से कह रहा हूं कि मुआवजा लेना जरूरी नहीं है। मैं मुआवजे का भी दान लेता हूं और बेजमीन वालों को जमीन दिलाना चाहता हूं। जिस तरह की समता भगवान को अभीष्ट है, वही मैं समझा रहा हूं।

मेरी आखिरी आकांक्षा यह है कि हर गांव एक-एक कुटुम्ब

बन जाय, यह सब मिल कर जमीन जोतें, पैदावार करें, सब एक साथ खायें-पीयें और एक साथ सुख से रहें। मैं ऐसे गांव को गोकुल कहता हूं। चाहता हूं कि हर गांव ऐसा बन जाय। आखिर गोकुल में होता क्या था ? सब एक साथ खाते-पीते और एक कुटुम्ब जैसे रहते थे। लेकिन यह सारा जो मुझे करना है, लोगों को समझाकर करना है।

कुछ लोग आक्षेप करते हैं कि यह तो श्रीमानों का एजेंट है। बात ऐसी नहीं है। सही बात तो यह है कि मैं खुद गरीब रहा हूं, गरीबों के बीच रहा हूं, इसलिए मैं गरीब का एजेंट तो हूं ही। उन की तरफ से मुझे अधिकार मिला है कि मै उनकी मांग लोगों के सामने पेश करूं। और मैं तो जमींदारों का भी एजेंट बनना चाहूंगा बशर्ते कि वे मुझे एजेंट बनाना कबूल करें और वे अपना सारा जीवन गरीबों की सेवा में लगा दें।

दूसरे लोगों ने मुझ पर यह भी आक्षेप किया है कि यह मनुष्य बहुत खतरनाक है। गांधीजी के साथ रहने पर भी यह ऐसा आदमी है कि जो सारे कानून की इज्जत ही खत्म कर रहा है। हमारे हक की जो चीज है उसपर भी यह आघात कर रहा है। इसने चलाया है कि जमीन पर किसी का हक ही नहीं। अगर इसके कहने के मुताबिक कानून नहीं बनाया गया तो साम्यवादियों के लिए रास्ता साफ कर देगा। इसने जो रास्ता अपनाया है वह साम्यवादियों के रास्ते से भी ज्यादा खतरनाक हो सकता है। मैं यह आक्षेप कबूल करता हूं। मेरा रास्ता यही रहेगा और अगर जमींदार अपने दिलों को तंग और कंजूस रखेंगे और उनकी देने की रफ्तार नहीं बढ़ेगी तो वे अपनी सारी इज्जत खो बैठेंगे और इज्जत खोना ज़िंदगी से हाथ धोने से भी अधिक खतरनाक है।

तो इस तरह मुझ पर दोनों तरफ से आक्षेप हो रहा है। एक यह कि श्रीमंतों का एजेंट हूं और दूसरा यह कि साम्यवादियों के लिए रास्ता साफ कर रहा हूं। मैं समझता हूं कि जब दोनों तरफ

से आक्षेप आता है तब मैं मानता हूं कि काम ठीक रास्ते पर चल रहा है और यही सीधी राह है। मेरा विश्वास है कि मैं सीधे, सरल और सत्यमार्ग पर चल रहा हूं।

परसों मैं उत्तर प्रदेश चला जाऊंगा। वहां भी लोगों को समझाऊंगा और नम्रता से बताऊंगा कि सबकी भलाई किसमें है। समझाना मेरा काम है। जब आज दूसरों पर कोई विश्वास नहीं करता है तब मैंने आप लोगों पर अत्यन्त विश्वास रखा है कि आप लोग मुझे जमीन देंगे। यह साधारण बात नहीं है। इस तरह से जमीन मांगने की हिम्मत भी होनी चाहिए। मैंने हिम्मत की और नारद मुनि की तरह सबके घर में अपना प्रवेश भी मान लिया है। मैं सभी गरीबों, श्रीमंतों और मध्यम वर्ग वालों के घर जाता हूं और सबके रूप में विष्णु का रूप देखता हूं। मेरा विश्वास है कि हिन्दुस्तान के श्रीमंतों में और गरीबों में सबमें गुण भरा पड़ा है।

असगुणगायि, रिझायि, स्वामिसौं पै है।
जो मुंह मांगि है तू एहि विधि सुख शयन सोइहै॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि स्वामी का गुणगान करके, उसे रिझा करके जो मांगोगे वही प्राप्त होगा और निश्चित होकर रात को सोओगे।

तुलसीदास जी की तरह अगर हम भी अपने स्वामी का गुणगान करेंगे और उसे रिझा सकेंगे तो जैसे उन्होंने (तुलसीदासजी ने) स्वामी से सब कुछ पा लिया, वैसे ही हम भी पा सकेंगे। इसलिए जरूरत स्वामी को समझा सकने की है। मैंने उत्साह और शुद्ध हृदय से काम शुरू किया है और भगवान चाहेगा तो वह इसे पूरा करेगा।

राजघाट, २२ नवम्बर १९५१

: ११ :

राजधानी से अपेक्षा

हमारी यह नगरी सारे भारत की राजधानी है। भारत की संस्कृति का और सभ्यता का अच्छा दर्शन यहां होना चाहिए। जो भी अच्छाइयां हमारी सभ्यता में हैं, वे सारी यहां इकट्ठी होनी चाहिए। जैसे रामचन्द्र की अयोध्या नगरी हिन्दुस्तान के लोक-मानस में स्थिर हो गई है उसी तरह यह नगरी भी होनी चाहिए। अयोध्या का अर्थ ही अहिंसा होता है, जहां युद्ध का और झगड़े का कोई संबंध नहीं। 'अ' माने नहीं और 'योध्या' यानी युद्ध का संबंध। यह दिल्ली नगरी भी अयोध्या नगरी बननी चाहिए।

हमारी इस भूमि का, इस विशाल आर्य-भूमि का, इस प्राचीनतम पुण्यभूमि का यह परम भाग्य रहा है कि यहां सारी जमातें आईं, प्रेम से बसीं, और मानों पृथिवी का ही एक समग्र दर्शन हिन्दुस्तान में हुआ। जैसे वेदों में पृथिवी का वर्णन किया गया है, वैसा ही ठीक वर्णन इस भरत-भूमि का हो सकता है। 'नाना धर्माणम् पृथिवीम् विवाचसम्'——पृथिवी अनेक धर्मों से पवित्र है,जहां विविध भाषाएं, विविध वाणियों व विविध बोलियां बोली जाती हैं। अनेक धर्मवती और अनेक भाषावती जैसी पृथिवी है वैसी ही यह भरत-भूमि है। तो सब जमातों का प्रेम-भाव इस प्रिय नगरी में प्रकट होना चाहिए। यहां हिन्दू, मुसलमान, पारसी, सिख और क्रिस्ती रहते हैं। और भी अनेक जमातों के लोग यहां इकट्ठे हुए हैं अर्थात् हम इस नगरी में सारे भारत की सभ्यता के प्रतिनिधि मौजूद है। इस भावना का स्पर्श यहां के हर नागरिक को होना चाहिए और परस्पर में अत्यन्त स्नेहभाव से रहना चाहिए। दुनिया में चाहे कुछ भी हो, दिल्ली में तो यही दर्शन होना चाहिए कि सारे लोग एक कुटुम्बीजन की तरह रह रहे हैं। यह यहां के नागरिकों की खास ज़िम्मेदारी है।

जैसे जमातों में मेल-जोल, दिली एकता आदि का दर्शन होना

जरूरी है वैसे ही स्वच्छता का भी दर्शन होना जरूरी है। स्वच्छता में व्यसनों से मुक्ति भी आ जाती है।

इस नगरी में मुझे दुःख के साथ कहना पड़ता है कि शराबखोरी बहुत चलती है। मद्यपान को हमारे पूर्वजों ने महापापों में से गिना है। पापों में भी पंच महापापों में मद्यपान की गिनती की है। मेरी प्रार्थना है कि इस नगरी से तो शराब निकल जाय। इसके लिए जो भी प्रयत्न करना जरूरी है, सबको मिलकर करना चाहिए। इस प्रकार स्वच्छता का पूरा दर्शन यहां हो सकेगा।

यह भी समझना चाहिए कि स्वच्छता में आडम्बर न हो, सादगी हो, क्योंकि हमारी संस्कृति ग्रामीण संस्कृति है। हमारी ७५ फी सदी से भी अधिक जनता ग्रामों में रहती है। उन सबका इस नगरी के साथ विशेष संबंध जुड़ा है। क्योंकि उनके प्रतिनिधि यहां लोकसभा में आकर बोलेंगे, चर्चा करेंगे। तो यहां की जीवन-पद्धति ऐसी होनी चाहिए कि उसमें सादगी हो, शान-शौकत का मिथ्या ख़याल न हो। चाहे इमारतें बड़ी-बड़ी बन चुकी हों तो भी उनके अन्दर रहने वाले अत्यंत सादगी से रहते हैं, ऐसा दर्शन होना चाहिए। साथ-ही-साथ यहां यह बात भी साफ दीखनी चाहिए कि यहां मेहतरों का काम करने वाले लोगों, दूसरे हरिजनों और कारखाने में काम करने वाले मजदूरों के बारे में हमारा जो कर्तव्य है वह हम करते हैं। हर नागरिक को उनकी सेवा के बारे में सोचना चाहिए। यह न समझें कि सब जिम्मेदारी सरकार की है। तुलसीदासजी ने सेवक और स्वामी के बारे में कहा है, "प्रभु तरुतर कपि डार पर।" प्रभु राम तो झाड़ के नीचे बैठते थे और बानर ऊंची शाखाओं पर। विनय को न जानने वाले ऐसे सेवकों से भी प्रभु ने सेवा ली और उन्हें भी अपने समान कर लिया। ऐसी प्रभु की रीति है। ऐसा ख़याल नहीं करना चाहिए कि यह तो सिर पर चढ़ बैठेंगे, बल्कि यदि बैठ भी जायं तो जैसे लड़का पिता के कंधे पर बैठ जाता है तो जैसी भावना होती है, वैसी होनी चाहिए। इस बात से डरना नहीं चाहिए कि वे ज्यादा तनख़्वाह मांगेंगे या ज्यादा अधिकार

मांगेंगे, बल्कि उनके लिए हमदर्दी होनी चाहिए और बीच-बीच में उनके काम में शरीक होना चाहिए, जिससे प्रेमभाव बढ़े।

अलावा इसके यहां शरणार्थी भाई भी आ बसे है। उनका भी ख़याल रखना नागरिकों का कर्तव्य है। हमें समझना चाहिए कि हमारे देश की इज्जत यहां के दर्शन पर निर्भर है। परदेश के लोग इसी को देखेंगे। उसी दृष्टि से मैंने दो-चार बातें कहीं।

जिस काम के लिए यहां आया था वह यहां चला। भूदान-यज्ञ का प्रचार किया गया। लोगों ने उसके लिए समय भी दिया। मैं आशा करता हूं कि मेरे जाने के बाद भी लोग यहां के काम के लिए अपना समय देंगे।

हम एक विचार में बंधे हुए हैं। सर्वोदय याने सब एक हैं, ऐसी प्रिय भावना हमारे हृदय में होनी चाहिए। यहां जाग्रति का स्थान है। अगर यह छोटी-सी जमात सेवा में लग जाय और हर हफ्ते भगवान की प्रार्थना के लिए आ जायं तो जो जमात छोटी-सी दिखाई पड़ती है, वह खमीर का काम करेगी। सारा समाज उससे प्रभावित होगा और सारे समाज को उसका लाभ मिलेगा, ऐसी आशा रखता हूं।

मैं आपके प्रेम के लिए आप सबका आभार मानता हूं। जो प्रेम आप ने दिया, उसका बदला तो मैं नही दे सकता। इतना ही कहूंगा कि गरीबों की सेवा के लिए तन-मन-प्राण से लग जाऊंगा। आप लोगों का मुझ पर जो प्रेम है वह मुझे हमेशा बलवान बनायेगा और उसी को मैं परमेश्वर की कृपा कहता हूं, उसका आशीर्वाद कहता हूं। उस आशीर्वाद से जब तक संभव है, निरन्तर सेवा करते रहने की मेरी कोशिश होगी। मेरी यही प्रार्थना है कि कोई कुसंस्कार यदि चित्त के किसी कोने में पड़े हों तो वे सब इस सेवा के पवित्र जल से धुल जावेंगे। यही आशीर्वाद आप मुझे दें और यही कामना मेरे लिए करें।

राजघाट, २३ नवम्बर १९५१

परिशिष्ट

: १ :

भूमि-समस्या का शांतिपूर्ण हल

[विनोबाजी जिस दिन राजधानी में पहुंचे उसी दिन दोपहर बाद उनकी कुटी में सम्वाददाता-सम्मेलन हुआ, जिसमें अनेक विदेशी पत्रकार भी शामिल थे। इस सम्मेलन में विनोबाजी ने भूदान-यज्ञ की प्रेरणा, उसका श्रीगणेश तथा उसकी कल्पना के विकास के संबंध में विस्तार से और अत्यन्त स्पष्टता के साथ अपने विचार प्रकट किये। विनोबाजी हिन्दी में बोले, लेकिन हिन्दी न जानने वाले पत्रकारों के सुभीते के लिए श्रीमती आशा-देवी आर्यनायकम् साथ-साथ अंग्रेजी में अनुवाद करती गईं। कुछ समय तक राष्ट्रपति डा० राजेंद्रप्रसाद भी इस सम्मेलन में उपस्थित थे। विनोबाजी ने कहा :]

तेलंगाना में मैंने देखा कि सारा झगड़ा जमीन के कारण है, इसलिए भूमि का मसला हल करना ही चाहिए। मैंने एक दिन हिम्मत करके सभा में लोगों से जमीन मांगी और कहा कि अगर आप लोग गरीबों को देने के लिए जमीन दे देंगे तो अच्छा होगा। मुझे आश्चर्य हुआ कि मुझे वहीं १०० एकड़ भूमि मिल गई जबकि वहां गरीबों की मांग ८० एकड़ की थी। इस घटना के बाद मैंने देखा कि इसमें परमात्मा का हाथ है। यहीं से मैंने जमीन मांगना शुरू किया। हैदराबाद-राज्य में मुझे लगभग १५,००० एकड़ भूमि मिली, जिसका वितरण हो रहा है। और अधिक भूमि भी मिल रही है। अभी दिल्ली आते समय ५ राज्यों में से मुझे लगभग २०,००० एकड़ भूमि मिली है।

लोग पूछते हैं कि आप इस तरह से कितनी जमीन चाहते हैं? मैं कहता हूं कि ५ करोड़ एकड़। मैंने हिसाब किया है कि देश में ३० करोड़ एकड़ भूमि पर काश्त होती है। यदि औसतन ५ व्यक्ति

का एक परिवार है तो दरिद्रनारायण को परिवार में छठा व्यक्ति मान लें। इस तरह यदि पांच करोड़ एकड़ भूमि मिल जाती है तो काम बन जाता है।

यदि इसी रफ्तार से जमीन मिलती गई तो इतनी भूमि एकत्र करने में कई वर्ष लग जायंगे। लेकिन मैं समझता हूं कि अब दिन-प्रतिदिन तेज रफ्तार से भूमि मिलेगी, क्योंकि हैदराबाद में मुझे औसतन प्रतिदिन २०० एकड़ मिलती थी। इस यात्रा में औसतन ३०० एकड़ भूमि मिली है।

मैं जमीन की भिक्षा नहीं मांगता, दरिद्रनारायण का हक मांगता हूं और दीक्षा देता हूं।

इस बात को लोगों को समझना चाहिए। आज भारत में भूमि का महत्व बढ़ रहा है, क्योंकि आबादी बढ़ रही है और ग्रामोद्योग समाप्त हो रहा है। यदि भूमि की समस्या शान्तिपूर्ण तरीके से हल नहीं होगी या इसके लिए वातावरण तैयार नहीं होगा तो खूनी क्रान्ति होकर रहेगी। लेकिन मुझे गांधीजी के शांति के तरीके पर पूरा विश्वास है।

मैंने वहां साम्यवादियों को सलाह दी कि हिंसात्मक तरीके से काम करना छोड़ दें। मैं यह नहीं कह सकता कि उनको यह बात जंची, लेकिन कुछ असर तो हुआ।

यदि ऐसी हवा तैयार हो जाती है और लोग यह मान लेते हैं कि भूमिहीनों को जमीन मिलनी चाहिए; लेकिन मोह से नहीं देते हैं तो भूमि की समस्या, जो देश की सबसे बड़ी समस्या है, कानून द्वारा सरलता से हल हो सकती है। लेकिन यदि ऐसी हवा तैयार नहीं होती है तो भूमि का मसला खूनी क्रान्ति से हल होगा।

प्रश्न——मध्यपूर्व के देशों की भूमि-समस्या कैसे हल की जाय?

विनोबा——मैं अन्य देशों की समस्या के हल के लिए कोई भी तरीका बताने का दावा नहीं करता, लेकिन यदि हमारे देश का प्रयोग सफल हो जायगा तो इसे अन्य देश भी आजमा सकते हैं।

प्रश्न—क्या आप समस्याओं के हल करने के अपने तरीकों की शिक्षा दूसरे देश वालों को भी दे सकते हैं ?

विनोबा—कोई भी व्यक्ति मेरे साथ पैदल चल कर मुझसे मेरा तरीका सीख सकता है।

राजघाट, १३ नवम्बर १९५१

: २ :

कांग्रेस की शुद्धि

[कांग्रेस-कार्यकर्त्ताओं से चर्चा करते हुए विनोबाजी ने कहा :]

जब महायुद्ध छिड़ा तब उसके हेतु की चर्चा चली थी। आखिर उन लोगों ने कुछ तो कारण बताने की चेष्टा की, लेकिन चर्चिल बहुत साफ बात करने वाले आदमी हैं। उन्होंने कहा; "युद्ध का और क्या मकसद हो सकता है, सिवा इसके कि जब प्राप्त की जाय ?" अगर हमारे इलेक्शन का भी यही उद्देश्य हो कि किसी तरह कांग्रेस को जय हासिल हो तो मैं कहूंगा कि देश खतरे में है।

बहुत दफे कांग्रेस की शुद्धि की बात होती है और आज तो पंडितजी खुद उसकी शुद्धि में लगे हुए हैं। मैंने उस रोज प्रार्थना-सभा में कहा था कि जबतक कांग्रेस के सामने कोई त्याग और सेवा का कार्यक्रम नहीं आता तबतक शुद्धि नहीं हो सकेगी। मैं मिसाल दे दूं। बम्बई और मद्रास ने सारा प्रदेश 'ड्राई एरिया' घोषित कर दिया। वहां अब कुछ लोग चोरी से शराब बनाते हैं। फिर सरकार कहती है कि "देखो, शराबबन्दी का क्या नतीजा आया ? इसलिए आहिस्ता-आहिस्ता बढ़ना चाहिए, तेजी से नहीं बढ़ना चाहिए।"

शराबबन्दी कांग्रेस का एक नैतिक कार्यक्रम था, जिससे कांग्रेस की इज्जत बढ़ी है। गांधी-अर्विन-पैक्ट में सरकार से जो समझौता हुआ,उसमें गांधीजी को अपनी लड़ाई रोकनी पड़ी। फिर भी गांधीजी ने कहा, "शराब के पिकेटिंग का यह कार्यक्रम हमारा नैतिक कार्यक्रम है। उसे बन्द करने का आप क्यों आग्रह

करते हैं" लार्ड अर्विन को वह बात माननी पड़ी।

अब जब देश में शराबबन्दी का कार्यक्रम चल रहा है तब कांग्रेस वालों को क्या यह आदेश नहीं मिलना चाहिए था कि वह उसे सफल बनाने में लग जायं? ऐसा आदेश देना किसका काम था? और वह क्यों नहीं दिया गया?

और फिर यह कहना कि शराबबन्दी के काम में उतनी सफलता नहीं मिल रही है और इसलिए "गो-स्लो" की पालिसी अख्तियार की जाय, कहां तक ठीक है?

होना तो यह चाहिए था कि एक-दो साल तक सारे-के-सारे कांग्रेस-कार्यकर्त्ता इस काम में लग जाते और इस कार्यक्रम को सफल बनाते; लेकिन हुआ यह है कि यह काम पुलिस के सुपुर्द कर दिया गया है, जो खुद शराबखोर होती है। बावजूद इसके, वह कार्यक्रम काफी सफल रहा, यही आश्चर्य की बात है।

मेरी समझ में नहीं आता कि सारे नेता यहां जमा होते हैं, गांधीजी के पास ही उन्होंने तालीम पाई है, जो इतिहास मैं जानता हूं, वे भी जानते हैं, फिर क्यों नहीं वे इसमें सब शक्ति लगा देते? क्या इसलिए कि इससे कोई अधिक महत्व का कार्यक्रम उनके सामने मौजूद है? उस हालत में भी मैं तो यही कहता कि कांग्रेस के कुछ कार्यकर्त्ताओं को इसी में लग जाना चाहिए था। कांग्रेस के सभासदों की कसौटी हो, ऐसा कोई कार्यक्रम कांग्रेस को नहीं दिया गया। उल्टे, जैसे धनवान लोग भगवान की पूजा करके उसको मनाना करना चाहते हैं तो पूजा के लिए पुजारी रख देते हैं, उसी तरह कांग्रेस ने सोचा कि खादी के लिए चर्खा-संघ है, ग्रामोद्योग के लिए ग्रामोद्योग-संघ है। शिक्षण के लिए तालीमी संघ है और हरिजन सेवा के लिए हरिजन-सेवक-संघ है। वे संस्थाएं यह सब काम करती ही हैं, पुण्य हमको मिलता ही है, हमें अलग से कुछ करने की जरूरत नहीं है; लेकिन पुजारी की पूजा से सेठ को भक्ति-लाभ नहीं हो सकता। कांग्रेस वाले खुद खद्दर खरीदते हैं, वह भी अन-सर्टिफाइड खद्दर भंडार से ही खरीदते हैं। खादी-उत्पत्ति-केन्द्रों को

चर्खा-संघ द्वारा प्रमाणपत्र देने की बात निकलती है तो उसका भी वे विरोध करते हैं।

पंडितजी कांग्रेस की शुद्धि के लिए प्रयत्न कर रहे हैं। पंडितजी महान पुरुष हैं और उनका संकल्प भी महान है। परन्तु एक पुरुष एक महान संकल्प करे और हजारों कांग्रेस वाले तद्विरोधी संकल्प किया करें तो क्या परिणाम आवेगा? परसों हम लोग मिले तो इतने दिनों बाद होने वाली उस प्रथम मुलाकात में भी पंडितजी का दुःख प्रकट हुआ। लेकिन केवल दुःख करने से कोई समस्या सुलझ नहीं सकती। मनुष्य को दुःख और सुख दोनों से ऊपर उठकर तटस्थता से सोचना पड़ता है। तब उपाय सूझता है।

अब यह चुनाव आया है। चुनाव में कांग्रेस वाले सत्य को कभी न छोड़ें, शुद्धि-साधनों का उपयोग करें, किसी पर कोई बेजा दबाव न डाला जाय और कांग्रेस जीत जाय तो उसकी वह जीत अवश्य अभिनंदनीय होगी। उस सूरत में वह हार जाय तो वह हार भी अभिनंदनीय होगी। अगर ऐसा नहीं हुआ, बुरे साधन काम में लाये गए तो सिर्फ गुंडों के विजयी होने से सत्य की विजय हुई, ऐसा नहीं माना जायगा। हमने 'सत्यमेव जयते' तो कहा है; लेकिन उसका अर्थ यह है कि जिसकी विजय हुई उसके साथ सत्य आ ही गया।

मुझसे अक्सर यह पूछा जाता है कि वोट किसे दिया जाय? इस संबंध में मैं अपने मित्र की मिसाल दिया करता हूं। जब मुझसे उस मित्र ने वोट मांगा तो मैंने कहा कि "मैं तेरे लिए जान देने के लिए तैयार हूं; पर वोट नहीं दे सकता, क्योंकि इस बात के लिए मैं तुझे योग्य नहीं समझता।"

मैं वोट देने के मामले में पार्टी-लेबिल को कोई महत्व नहीं देता। जो व्यक्ति या संस्थाएं हिंसात्मक कार्यक्रम को मानती हैं या जो जातिवादी हैं उनको वोट देने का सवाल ही नहीं है। लेकिन दूसरी पार्टियों के बारे में मैं यही कहूंगा कि "वोट उन्हें ही देना चाहिए जो सत्यनिष्ठ, निस्स्वार्थ हैं, जनसेवा में तत्पर हैं और

अपना काम ठीक जानते हैं। अगर ऐसी मर्यादा हम तय कर लेंगे तो पार्टियां गफलत में नहीं रहेंगी, जागृत हो जायंगी और खराब आदमी को खड़ा ही नही करेंगी, अन्यथा केवल पार्टियों की तरफ से खड़े होने के कारण अगर वोट देने की बात पेश हो तो उम्मीदवारों के चुनाव में कोई रुकावट नही रहेगी और डिमाक्रेसी-लोकशाही खत्म होगी।"

लोग पूछते हैं कि फिर कांग्रेस के खिलाफ वोट देने वालों को भी आपका बल मिलता है। आप उन्हें भी पसन्द करते हैं। मैं कहता हूं, "जी हां, मुझे इसका भय नहीं, और तीनों पक्षों में मेरे मित्र-लोग ही काम कर रहे हैं। इधर पंडित जवाहरलाल नेहरू हैं, जो हमारे देश के अत्यन्त प्रिय नेता हैं और रात-दिन अपने देश की चिंता उन्हें रहती है। उधर किसान-मजदूर प्रजा-पार्टी में कृपलानीजी हैं, जो कांग्रेस की शुद्धि चाहते हैं और उनका जी भी गरीबों की सेवा के लिए तड़पता है। उधर श्री जयप्रकाशजी हैं, जो हमारे कुटुम्ब के ही हैं, दयालु हैं तथा गरीबों का भला चाहते हैं। ये सारे अच्छे लोग हैं। इसलिए मै इतना ही कहूंगा कि अच्छे लोगों को मत दिया जाय। पार्टी-विशेष का विचार छोड़ दिया जाय।

प्रश्न—यह कब संभव है कि कांग्रेस-कार्यकर्त्ता और रचनात्मक कार्यकर्त्ता एकसाथ मिलकर काम कर सकें?

विनोबा—यह तभी संभव है कि जब सारे कांग्रेस वाले रचनात्मक काम करने वाले बन जायं। जब यह होगा तब यह भी होगा कि रचनात्मक काम करने वाले ही कांग्रेस वाले बन जायंगे। इस बारे में गांधीजी के साथ मेरी कई बार बातें हुई थीं। उन्होंने हमेशा कहा था कि ईस्ट इंडिया कम्पनी की दुकान की तरह हमारे कांग्रेस-दफ्तर में हमारे सारे कार्य का पूरा दर्शन मिलना चाहिए। किसी को पुनाई करनी है, किसी को कताई के साधन जुटाने हैं, किसी को बुनाई का ज्ञान प्राप्त करना है, तो सब वहां संभव होना चाहिए। इसके सिवाय लोगों के दुःखों का लेखा-जोखा भी वहां

चाहिए। वोटर-लिस्ट भी वहां बन रही है ऐसा होना चाहिऐ और तब यह होगा कि वे लोग राजनैतिक काम करने के कारण रचनात्मक काम करने वाले कहलायंगे और रचनातमक काम करने के कारण राजनैतिक कार्यकर्त्ता कहलावेंगे। और फिर जब आप अपने मुल्क के लिए नेशनल प्लानिंग कमेटी कायम करेंगे तो ऐसे अनुभवी लोगों के आधार पर करेंगे। वास्तव में राजनैतिक दृष्टि और रचनात्मक कार्य दोनों में स्वराज्य के बाद कोई फरक नहीं हो सकता। स्वराज्य में और करना क्या पड़ता है ? सारे रचनात्मक काम ही तो करने पड़ते हैं। राजनीति उससे अलग हो ही नहीं सकती। राजनीति की व्याख्या ही यह है कि जिस योजना से और जिस शक्ति से रचनात्मक काम सब ओर फैल सके, वही राजनीति है। इसलिए दोनों में कोई फरक नहीं हो सकता। होना तो यही चाहिए कि कांग्रेस का हर कार्यकर्त्ता कातने वाला हो, उसके दिल में हिन्दू-मुसलमानों के लिए समान-भाव हो, छूत-अछूत की भावना न हो। वह सर्वोदय के सिद्धान्तों में मानने वाला हो। यह होनी चाहिए कांग्रेसवाले की पहचान।

यह न होते हुए प्रश्न किया जाता है कि कांग्रेस वाले और रचनात्मक काम करने वाले एकसाथ कैसे रह सकेंगे ? दूसरे शब्दों में सवाल यह आता है कि प्रकाश और अन्धकार एकसाथ कैसे रहेंगे ?

तम और प्रकाश की यह उपमा मैंने सोच कर ही दी है। प्रकाश उस तम का विरोध भी नहीं करेगा। जो ना-चीज है, उसका विरोध भी क्या करना ? क्या लकड़ी लेकर आकाश को पीटना होता है ? कांग्रेस वाले तो सत्ता में गये, तभी उनकी शक्ति खत्म हुई। इसलिए जबतक रचनात्मक काम और कांग्रेस वाले एक नहीं हो जाते तबतक जो लोग चुनकर गये हैं वे शक्तिशून्य होंगे और दूसरे, जो नहीं चुने गये हैं, वे उनका मत्सर करेंगे, जो चुनकर गये हैं। इसलिए वे भी शक्तिशून्य होंगे। तो इस तरह यह शक्तिशून्य लोगों का एक दल निकला है। याने कुछ सत्ता के अधिकारी

और कुछ सत्ता के अभिलाषी, ऐसा यह मेला है। रचनात्मक काम के बारे में वे सोचते जरूर होंगे, लेकिन इस तरह सोचते होंगे कि हमें खादी का काम नहीं करना चाहिए, क्योंकि चर्खा-संघ कर रहा है। हरिजन-सेवा नहीं करनी चाहिए, क्योंकि हरिजन-सेवक-संघ कर रहा है। ग्रामोद्योगों की ओर ध्यान देने की जरूरत नहीं है, क्योंकि ग्रामोद्योग-संघ ध्यान दे रहा है। इस तरह यह बेकारों की एक जमात हो जाती है। और फिर बेकारों का धंधा सिवा इसके और क्या रहता है कि दूसरों को नीचे गिरायं ?

प्रश्न——रचनात्मक कार्यकर्त्ता कांग्रेस में आवें तो उन्हें रुकावट तो नहीं, और कांग्रेस वाले तो यथाशक्य रचनात्मक कार्य करते ही हैं। फिर दोनों एक क्यों नहीं रह पाते ?

विनोबा——मैंने तो यह कहा कि जितने कांग्रेस वाले हैं वे रचनात्मक कार्यकर्त्ता बन जायं। जब यह होगा तो आप देखेंगे कि रचनात्मक कार्यकर्त्ता कांग्रेस वाले बन जायंगे। आज तो वे कांग्रेस में नहीं हैं। कारण दोनों के विचारों में मतभेद है। मैं अपनी ही मिसाल दे दूं। पच्चीस वर्ष पहले मैंने कांग्रेस को छोड़ा। कुछ वर्षों बाद गांधीजी ने भी कांग्रेस छोड़ दी। मैंने विनोद में गांधीजी से कहा था कि अरुणोदय के बाद सूर्योदय भी आवेगा। वैसा ही हुआ। उनका संबंध ऊपर के लोगों से आता था। मेरा संबंध नीचे के लोगों से आता था। इसलिए मुझे बात पहले ही सूझी। बावजूद इसके कि मैंने कांग्रेस छोड़ी, कांग्रेस की सेवा तो मैं करता रहा हूं।

आप लोग यही खैरियत समझिए कि हमने अभी राजनीति में प्रवेश नहीं किया है। परन्तु इस बारे में मैं कायम के लिए कोई आश्वासन नहीं दे सकता। आखिर कृपलानीजी भी क्यों अलग हुए ? और अलग पार्टी उन्हें क्यों बनानी पड़ी ?

प्रश्न——अच्छे लोग कांग्रेस से अलग रहेंगे तो गलत लोग तो आवेंगे ही। अच्छे लोग उसमें आवें तो वह सुधर भी सकती है।

विनोबा—यह जो आपने कार्यक्रम बताया वह नदियों ने कर देखा। उन्होंने सोचा कि अगर हम समुद्रमें नहीं जायगी तो समुद्र खारा ही रहेगा। परन्तु उन्होंने देख लिया कि समुद्र तो मीठा नहीं बन सकता। कांग्रेस में दूसरे अवांछनीय लोग न आ सकें, या उनके लिए कांग्रेस का दरवाजा बन्द रहे, ऐसी क्या योजना है कांग्रेस के पास? जबतक ऐसा नहीं होता तबतक यदि रचनात्मक काम करने वाले कांग्रेस में नहीं दाखिल होते तो उनका वह गुण ही माना जायगा।

प्रश्न—पंडितजी कांग्रेस के अध्यक्ष होते हुए रचनात्मक काम की ओर जरा भी समय नहीं दे रहे हैं। तब और लोगों को प्रेरणा कैसे मिले?

विनोबा—आपके इस विधान की सचाई के बारे में मुझे शक है। पंडितजी का ध्यान रचनात्मक कार्यक्रम में है, ऐसा मैं मानता हूं। वरना वे नेशनल प्लानिंग कमेटी के अध्यक्ष नहीं बनते। कोई प्राइम मिनिस्टर नेशनल प्लानिंग की इतनी बड़ी जिम्मेदारी क्यों उठाता? लेकिन हां, एक बात है कि रचनात्मक काम के बारे में उनके भी कुछ विचार हैं। गांधीजी के और उनके विचारों में कुछ मतभेद रहा है। वह पहले भी था। आज ही प्रकट हुआ है, ऐसी बात नहीं है। उतना फरक ध्यान में रखकर हमें सोचना चाहिए।

प्रश्न—पश्चिम में तो डेमोक्रेसी चलती है, और यहां तो सत्य और अहिंसा से काम लेना है। तब दोनों का मेल कैसे जमेगा?

विनोबा—इस प्रश्न में यह माना गया है कि सत्य और अहिंसा मानो हिन्दुस्तान की ही विशेषता है। लेकिन ऐसा नहीं है। पश्चिम में भी सत्य और अहिंसा है। पश्चिम की डेमोक्रेसी जो यहां आई है उसमें एक फरक हमें जरूर करना पड़ेगा। उसका अंध-अनुकरण करके हम लोगों ने 'पांच बोले परमेश्वर' वाली बात छोड़ दी है और चार-विरुद्ध-एक या तीन-विरुद्ध-दो वाली

बात ले ली है। यह है वह डेमोक्रेसी, जो पश्चिम से आई है, जिसने अल्पमत-बहुमत के भेद खड़े किये हैं। इसलिए कम-से-कम ग्राम-पंचायत में जो कुछ कार्यवाही करनी हो और जितने प्रस्ताव पास करने हों वे तो एकमत से करने की बात सोचनी चाहिए, ताकि अल्पमत-बहुमत के कारण निर्माण होने वाली फूट की बुराई हमारे यहां नहीं आवेगी।

राजघाट, १७ नवम्बर १९५१

: ३ :

विविध शंकाएँ और उनका समाधान

[यह सम्वाददाता-सम्मेलन विनोबाजी के दिल्ली से प्रस्थान करने के एक दिन पूर्व हुआ। पहले सम्मेलन की भांति इसमें भी अनेक विदेशी पत्रकार उपस्थित थे। विनोबाजी ने हिन्दी में ही बोलने का आग्रह रखा और उसका अनुवाद अंग्रेजी में साथ-साथ होता गया। सर्वप्रथम विनोबाजी ने एक संक्षिप्त वक्तव्य दिया। बाद में प्रश्नोत्तर हुए। विनोबाजी ने जिस सचाई, स्पष्टता, सहजता और बुद्धिमत्ता से प्रश्नों के उत्तर दिये, उससे पत्र-प्रतिनिधि बहुत प्रभावित हुए। इन प्रश्नोत्तरों में कहीं-कहीं विनोद की भी सुन्दर झांकी मिलती है। प्रारंभिक वक्तव्य देते हुए विनोबाजी ने कहा :]

आज भी मैं हिन्दी में ही बोलूंगा। इसके पीछे एक विचार है। मैं जो कुछ कहूंगा उसका तर्जुमा अंग्रेजी में किया जायगा। हमारे इस देश में वर्षों से अंग्रेजी का राज चला और हमारी भाषाएं दबाई गई। अब स्वराज्य आने के बाद भी सरकार का कारोबार अंग्रेजी में ही चलेगा, इस बात को मैं पसन्द नहीं करता हूं। मैं चाहता हूं कि हमारा सारा कारोबार हिन्दी में चले। इसलिए मैंने निश्चय किया है कि जब हिन्दुस्तान में किसी जमात के सामने बोलना हो तो हिन्दी में ही बोलूंगा। व्यक्तिगत संभाषण में जरू-

रत पड़ने पर मैं अंग्रेजी बोल लेता हूं। पर जमात में हिन्दी ही बोलता हूं। मैं अंग्रेजी की कद्र करता हूं और मुझे उसके प्रति प्रेम है। मैंने उसका थोड़ा अध्ययन भी किया है। इतना मैंने प्रस्तावना के तौर पर कहा, ताकि आप लोग मेरी भावनाएं समझ सकें। मैं दुनिया की सब भाषाओं की इज्जत करता हूं, परन्तु मेरे देश में हिन्दी की इज्जत न हो, यह मैं नहीं सह सकता। अब आप लोग प्रश्न पूछ सकते हैं।

प्रश्न—आपके इस भूदान-यज्ञ से जमीन के और भी टुकड़े हो जायंगे, फिर उत्पादन कैसे बढ़ेगा ? क्या फिर लोग सहकार की ओर बढ़ेंगे ?

विनोबा—छोटे-छोटे टुकड़ों में भी पर्याप्त रूप से अनाज पैदा हो सकता है और उनमें आपस में पार्शियल कोआपरेशन भी हो सकता है। चीन में भी तो छोटे-छोटे टुकड़े बांटे गए हैं।

प्रश्न—लेकिन क्या दो एकड़ वाले से एक एकड़ लेना ठीक है ?

विनोबा—मैंने तो अपने व्याख्यानों में कई बार कहा है कि मैं तो एक हवा पैदा करना चाहता हूं। अगर मैंने दो एकड़वाले से कुछ लिया तो उसका उपयोग कैसे करना, यह मैं फिर देखूंगा। जो गरीब अपने दो एकड़ में से भी एक एकड़ देता है वह तो क्रांतिकारी है। ऐसे दान के पीछे जो भावना होती है उससे एक वातावरण बनता है। अगर दाता गरीब है तो शायद उसकी जमीन मैं उसे ही वापस करूं और उसे कहूं कि एक ट्रस्टी के नाते इसे सम्हालो।

प्रश्न—आपके इस भूदान-यज्ञ का उद्देश्य क्या है ? क्या आप क्रांति रोकना चाहते हैं या लाना चाहते हैं ?

विनोबा—दोनों करना चाहता हूं। मैं हिंसक क्रांति रोकना चाहता हूं और अहिंसक क्रांति लाना चाहता हूं।

प्रश्न—भारत की विदेश-नीति के बारे में आप क्या सोचते हैं ?

विनोबा—यह तो बहुत बड़ा सवाल है। हरएक सवाल के विषय में हर एक नुष्य कोनहीं सोचना चाहिए। इस बारे में मेरे कुछ विचार हैं। परंतु मैं नहीं चाहता कि हर शख्स इस बारे में लोगों के सामने अपने विचार रखे। लेकिन मेरा ख्याल है कि हमारी विदेश-नीति दुनिया में शान्ति रखने के लिए है और इस दृष्टि से ठीक तरह से चल रही है।

प्रश्न—बड़े-बड़े मन्दिरों और मठों के पास जो जमीन है, उसके प्रति आपकी क्या नीति है ?

विनोबा—मुझे भी लोग मदरसों आदि के लिए जमीन देते हैं; परन्तु मै उसे स्वीकार नहीं करता; क्योंकि जो जमीनें मन्दिर, स्कूल आदि के लिए मिलती हैं, उनके मुनाफे की आशा पर संस्थाएं चलाई जाती हैं और वह भी मजदूरों से काम लेकर। किसान स्वयं उस जमीन का मालिक नहीं बनता। मैं तो मन्दिरों और मठों के पास की भी जमीन मांगूंगा। एक जगह एक मन्दिर के ट्रस्टी ने, सब ट्रस्टियों से सलाह-मशविरा करके मुझे मन्दिर की जमीन में से एक-चौथाई हिस्सा दे दिया। मैं चाहता था कि वे उससे भी ज्यादा दें; पर उनकी भी मुश्किलें थीं। इसलिए मैंने इतना ही स्वीकार किया। इससे शायद मेरी कल्पना स्पष्ट हो गई होगी। पाठशाला के लिए कोई जमीन दे और पाठशाला वाले मंजूर करें कि छात्रों तथा शिक्षकों द्वारा ही वहां काम किया जाय तो मैं कबूल करूंगा।

प्रश्न—जमींदारी-निर्मूलन-योजनाओं के बारे में आपके क्या विचार हैं ?

विनोबा—राज्य-सरकारें जो कर रही हैं, वह संविधान की मर्यादा के अन्दर जितना कर सकती हैं, उतना कर रही हैं। लेकिन मेरी कोशिश तो यह है कि ऐसा वातावरण पैदा हो जिससे संविधान की मुआवजा देने की मर्यादाएं नष्ट हों। हम जमींदारों

को समझा सकते हैं कि उनको अपने हिस्से का पूरा मुआवजा लेने की जरूरत नहीं है। सिर्फ उनको जितना चाहिए, उतना रखें। मैंने तो मुआवजे का भी हिस्सा मांगा है और मुझे मिला है।

प्रश्न—संविधान में आवश्यक संशोधन करने के बारे में आप क्या सोचते हैं ?

विनोबा—उसके लिए जमींदारों की नैतिक सम्मति चाहिए।

प्रश्न—क्या यह अनिवार्य है ?

विनोबा—हमें जो अहिंसक समाज बनाना है, उसमें कानून को स्थान तो है। परन्तु कानून लादा नहीं जाना चाहिए। उसके लिए लोगों की हार्दिक और नैतिक सम्मति चाहिए।

प्रश्न—परन्तु इतिहास और मानस-शास्त्र तो यही कहता है कि जो वेस्टेड इंटरेस्ट वाले हैं वे अपनी खुशी से अपना इंटरेस्ट छोड़ने के लिए कभी तैयार नहीं होंगे।

विनोबा—यह तो आपको समझना चाहिए कि इतिहास में जो बातें बनी हैं उनसे नई बातें भी आगे बननेवाली हैं। मगर मेरा यह मानना है कि मानस-शास्त्र के बारे में जो ख्याल है वह गलत है। कुटुम्ब में एक भाई ज्यादा कमाता है, दूसरा कम कमाता है, फिर भी सारे-के-सारे एकसाथ खाते हैं, एकसाथ रहते हैं। मेरा ख्याल है, सारा गांव भी इसी तरह एक परिवार बन कर रह सकता है। जिस जमाने में से हम गुजर रहे हैं, उसके लिए यह विचार अनुकूल भी है। एक बात समझनी चाहिए कि कम्यूनिस्टों का जो विचार है वह भी इतिहास में पहले तो कभी प्रकट हुआ नहीं था। फिर भी रशिया में उसका प्रयोग हुआ। इसी तरह अहिंसक क्रांति के लिए भी गुंजाइश है। नई कल्पनाएं वास्तव रूप धारण कर सकती हैं।

प्रश्न—जब आप कहते हैं कि जमीन भगवान की है और जनता ही जमीन की मालिक है, तब बीच में तीसरी पार्टी की क्या जरूरत है ?

विनोबा—दुनिया में कन्याएं हैं और वर भी हैं; परन्तु उनके

बीच भी माता-पिता की आवश्यकता रहती है। जब लोग मेरे विचार को समझ जायंगे तो फिर बीच में विनोबा की जरूरत नहीं रहेगी। मैं लोगों को समझाता हूं कि जिनके पास जमीन है, वे कन्या के पिता हैं और भूमिहीन पुत्र के पिता हैं।

प्रश्न—क्या आप इस पिता-पुत्री वाली बात को पसन्द करते हैं? (आर यू इन फेवर आफ दिस फादर एण्ड डाटर बिज़नेस?)

विनोबा—हममें थोड़ी विनोद-बुद्धि भी होनी चाहिए। (देयर शुड बी ए लिटिल सेन्स आफ ह्यूमर)।

प्रश्न—क्या आपका यह प्रयोग इतिहास में अभिनव है?

विनोबा—जो मैं कर रहा हूं वह ऐतिहासिक आवश्यकता है। उसके खिलाफ नहीं है। लेकिन गंगा नदी का प्रवाह शुरू में छोटा होता है, फिर आगे बड़ा होता जाता है। मैं जानता हूं कि इस आन्दोलन का भी ऐसा ही होने वाला है।

प्रश्न—क्या आप यह चाहते हैं कि जबतक आवश्यक वातावरण निर्माण न हो जाय तबतक राज्य-सरकारें अपनी जमींदारी-निर्मूलन-योजनाओं को अमल में न लावें?

विनोबा—उन्होंने जितना किया है, अच्छा किया है। मैं उसे रोकना नहीं चाहता। मेरा कदम आगे का है। मैं तो एक कदम आगे जाना चाहता हूं।

प्रश्न—क्या आपके काम से छोटे किसान, जो आज पैसा देकर जमीन खरीदते हैं, वैसा करना छोड़ नहीं देंगे?

विनोबा—जिनको आज जमीन की जरूरत है और जो खरीद सकते हैं, वे पैसा देकर खरीद लेंगे। लेकिन जिनके पास पैसा नहीं है, उनको तो जमीन नहीं मिलेगी। वे क्या करें? क्या वे रुक जायं और कानून बनने तक चुप रहें। इसलिए मैंने तय किया है कि मैं कानून तक रुका नहीं रहूंगा। श्रीमानों से लेकर गरीबों को दे दूंगा। फिर कानून अपने आप बनता रहेगा—और गरीबों के हक में अधिक-से-अधिक बनेगा।

प्रश्न—आपकी योजना से तो भूमि के और भी छोटे-छोटे टुकड़े (फ्रैगमेंटेशन) होंगे।

विनोबा—छोटे-छोटे टुकड़ों से जितना डर आपको है, मुझे नहीं है। चीन की तरफ देखेंगे तो आपको मालूम होगा कि वहां की कम्यूनिस्ट सरकार भी लोगों को छोटे-छोटे टुकड़े ही दे रही है। छोटे टुकड़ों में भी अगर कुआं हो तो पैदावार ज्यादा हो सकती है। आज की यही समस्या है। इसलिए जरूरत इस बात की है कि हिंदुस्तान की जमीन के नीचे जो गुप्त सरस्वती बह रही है, उसे प्रकट किया जाय। आज सरकार जो बड़ी-बड़ी योजनाएं कर रही है, वे गंगाओं को उपयोग में लाने की हैं। मुझे तो सरस्वती को ऊपर लाना है। इस तरह लाखों कुएं खोदे गये तो एक एकड़ तरी जमीन (वेट लैंड) की योग्यता ४-५ एकड़ खुश्की जमीन (ड्राईलैंड) के बराबर हो सकती है। परमधाम आश्रम में, जहां मैं रहता हूं, पौन एकड़ टुकड़े में दस-बारह लोगों ने हाथ से काम किया और दस हजार पौंड तरकारी एक साल में पैदा की।

प्रश्न—चीन में थोड़े समय में भूमि-सुधार करने के कारण जो वैचारिक सांचेबन्दी (रेजीमेंटेशन)* हुआ उसे आप भारत में पसन्द कीजियेगा या नहीं ?

विनोबा—यह तो सवाल उल्टा पूछा। यहां रेजीमेंटेशन से

---

* **प्रेस-कांफ्रेंस के बाद एक बहन ने इसी सम्बन्ध में कुछ प्रश्न पूछे :**

प्रश्न—चीन में जमीन का सवाल हल करते समय रेजीमेंटेशन किया गया। उस बारे में आपकी क्या राय है ? प्रेस-कांफ्रेंस में भी यह सवाल पूछा गया था; परन्तु शायद उसकी ठीक सफाई नहीं हुई।

विनोबा—चीन के बारे में इस जगह कोई राय देना ठीक नहीं होगा। कुछ जमाना बीत जाने दो। देखो कि इस बीच वहां क्या परिस्थिति पैदा होती है। उसके बाद ही कुछ राय देना ठीक होगा।

प्रश्न—मार्क्स-स्वातन्त्र्य की दृष्टि से कम्यूनिज्म और रेजीमेंटेशन का जो विरोध करता है, उस बारे में आपकी क्या राय है ?

विनोबा—वह विरोध ठीक है।

प्रश्न—परन्तु कम्यूनिज्म के पुरस्कर्ताओं का कहना है कि

भूमिसुधार करने की जरूरत नहीं। उसकी तो कन्सालिडेशन के लिए जरूरत पड़ेगी। यहां तो फ्रैगमेंटेशन हो रहा है। छोटे-छोटे टुकड़ों के मालिक पार्शियली भी सहकार करें तो ठीक है।

प्रश्न——कुछ लोगों का यह ख्याल है कि आपका यह भूमि-दान-यज्ञ कांग्रेस के चुनाव में मदद देनेवाला है। गाजियाबाद में सरकारी कर्मचारियों ने भी भूदान दिलाने में अपना कुछ दबाव लोगों पर डाला है। आपको इसका ज्ञान है?

विनोबा——मुझे इसका ज्ञान नहीं है। मैंने तो कई बार कहा है कि अगर थोड़े भी दबाव से जमीन ली गई तो मुझे वह नहीं चाहिए, मैं वह दान-पत्र फाड़ डालूंगा। और अगर कांग्रेसवाले मुझे इस भूदान-यज्ञ में मदद करेंगे तो किसान-मजदूर-प्रजापार्टी वाले भी पीछे नहीं रहेंगे। दोनों मदद करेंगे और मेरा काम ठीक होगा। मुझे तो सोशलिस्टों ने भी मदद की है। करीमनगर जिले में एक सोशलिस्ट भाई ने अपनी आधी जमीन २५ एकड़ दे दी। मुझे तो कांग्रेसवाले, सोशलिस्ट, प्रजापार्टी वाले सभी मदद करते हैं, यहां तक कि र. स. स. (राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ) वालों ने भी मुझे मदद दी है।

प्रश्न——आपको सबसे ज्यादा दान किसने दिया है?

विनोबा——मुझे जो दान दिया है, मनुष्यों ने दिया है। मैं यह नहीं देखता कि दान ब्राह्मणों ने दिया या हरिजनों ने दिया, या कांग्रेसवालों ने कितना दिया और सोशलिस्टों ने कितना

'इंडिविज्युअल लिबर्टी इज इंटलेक्चुअल लक्जरी'। सर्वसाधारण मनुष्य के लिए वे व्यक्ति-स्वातन्त्र्य जरूरी नहीं समझते। उसे अगर भरपेट खाने को मिलता है तो वे काफी समझते हैं।

विनोबा——वह पशुओं की विचारधारा है, गधों की, जो कहते हैं, कि हमें अगर भरपेट खाने को मिलता है तो बस है। फिर मालिक हमसे जितना चाहे काम ले, जितना चाहे पीटे। जानवरों के लिए यह विचारधारा शोभ सकती है, मानवों के लिए नहीं।

दिया। मैं मानता हूं कि अच्छे लोगों ने दान दिया है और अच्छे काम के लिए दिया है।

प्रश्न—क्या यह प्रवाद सच है कि आपकी सहानुभूति (पोलिटिकल सिपथी) पं० नेहरू की अपेक्षा प्रजापार्टी के साथ अधिक है ?

विनोबा—मेरी सहानुभूति किस पक्ष में कितनी है, इसका मैंने अभी तक वजन नहीं किया है, क्योंकि तीनों पक्षों में मेरे मित्र हैं। पं० नेहरू, कृपलानी और जयप्रकाश, तीनों मेरे मित्र हैं। तीनों के लिए मेरे मन में आदर है और तीनों का मुझपर प्रेम है। तीनों से मेरी बातें हुईं और बड़े प्रेम से हुईं।

प्रश्न—क्या और भी किसी राजनैतिक दलवालों से आपकी बातें हुई हैं ?

विनोबा—और किस दल से ?

प्रश्न—आर० एस० एस० वालों से ?

विनोबा—एक-दो जगह उनके लोग मिलने आये थे। उनकी पूरी सहानुभूति इस काम में है।

प्रश्न—क्या मेरठ में आपसे गोलवलकर गुरुजी मिलने वाले हैं ?

विनोबा—मुझे मालूम नहीं है। मैं तो नारद हूं। हरएक घर में मैं जाता हूं। सबसे प्रेम से मिलता हूं और मुझसे भी हर कोई मिल सकता है।

प्रश्न—क्या आप सरकारी मदद लेना पसन्द करते हैं ? सुना है कि आपकी यह कुटी बनाने में सरकार ने ४०००) रुपये खर्च किये हैं ?

विनोबा—देश की सरकार, सारे देश की प्रतिनिधि होने के नाते, कुछ करे तो मैं उसमें दखल नहीं देना चाहूंगा। पर मेरी इच्छा तो यही रहेगी कि मेरे लिये जो कुछ करना है, लोग ही करें।

प्रश्न—के० एम० पी० पी० वाले आपको अपना मानते हैं ?

विनोबा—सज्जन मनुष्य का यह गुण है कि उसे सब अपना मानते हैं।

प्रश्न—क्या आपका यह यज्ञ भिक्षा-संस्था को जारी रखने का काम नहीं कर रहा है ?

विनोबा—मैंने पचीसों व्याख्यानों में इसका जवाब दिया है। परन्तु सारी रामायण सुनने पर राम की सीता कौन होती है, पूछने वाले सज्जनों में से ये हैं। दिल्ली के व्याख्यान में भी मैंने कहा है कि मैं भिक्षा मांगने नहीं आया हूं—दीक्षा देने आया हूं और अपना हक मांग रहा हूं।

प्रश्न—आपके विचार में साम्प्रदायिकता का क्या मतलब है ? क्या आप पं० नेहरू की परिभाषा से सहमत हैं ?

विनोबा—बात यह है कि साम्प्रदायिकता और कम्यूनलिज़्म में फरक है। संप्रदाय अच्छा भी हो सकता है और बुरा भी। ज्ञान का सम्प्रदाय, 'शंकराचार्य का अद्वैत सम्प्रदाय', यहां सम्प्रदाय शब्द अच्छे अर्थ में प्रयुक्त है। अंग्रेजी में इसे 'स्कूल' कहते हैं। इस अर्थ में मैं सम्प्रदाय के विरुद्ध नहीं हूं। परन्तु कम्यूनलिज़्म के अर्थ में मैं सम्प्रदाय के विरुद्ध हूं।

प्रश्न—आपकी राय में कौनसी संस्थाएं साम्प्रदायिक हैं ?

विनोबा—मैं किसी के बारे में नहीं कह सकता कि वह साम्प्रदायिक है। कोई भी संस्था घोषित कर सकती है कि वह साम्प्रदायिक है या नहीं।

प्रश्न—आपने पैसे को बुरा बताया है। अगर आपको पैसे से नफरत है तो फिर आपके विचार में और व्यवहार की दृष्टि में समझौता कैसे हो सकता है ?

विनोबा—अच्छा सवाल पूछा ! मैंने यह तो नहीं कहा कि पैसा एक नफरत की वस्तु है; बल्कि यह कहा कि पैसा, जो एक

अस्थिर वस्तु है, जिसका मूल्य नित्य ऊपर-नीचे जाता रहता है, उससे मुझे बचना है। आज जो मनी-इकोनामी चल रही है, जिससे हमारे देहात बरबाद हो चुके हैं, उससे मैं हिंदुस्तान को बचाना चाहता हूं। अगर देहातों के लोग अपनी प्राथमिक आवश्यकताएं खुद पूरी कर लेंगे तो वे पैसे से बच सकेंगे।

प्रश्न—क्या आप कोई ऐसा चलन मंजूर करेंगे जिसका मूल्य बदलता नहीं रहता है।?

विनोबा—जरूर करूंगा। मैंने तो कहा ही है कि मुझे बार्टर-पद्धति पसन्द नहीं है—मैं पेपर-करंसी ही पसन्द करता हूं, बशर्ते कि उसपर पैसों के नहीं, श्रम-घंटों के अंक लिखे जायं।

प्रश्न—लेकिन जब काम काम में फर्क रहेगा तब तो श्रम में भी गुणात्मक भिन्नता रहेगी। करंसी का स्टैंडर्ड समान कैसे रहेगा?

विनोबा—यह सवाल पूंजीवादी समाज ने पैदा किया है। मेरे यहां तरीका यह है कि स्त्री हो या पुरुष, एक घंटे में जो भी काम ईमानदारी से करता है उसका मूल्य समान है। मैं तो, कुटुम्ब की व्यवस्था को सारे समाज पर लागू करना चाहता हूं। कुटुम्ब में खाते सब हैं, लेकिन सब समान काम तो नहीं करते; परन्तु सब काम उपयुक्त हैं और सबका मूल्य समान है।

हम हरएक को उसकी लेबर के लिए ही जिम्मेदार समझते हैं। यदि हम समाज को एक घटक मान कर उसका नवनिर्माण करना चाहें तो यह सवाल पैदा ही नहीं होगा।

प्रश्न—आपने अपने भूदान-यज्ञ के कार्यक्रम के लिए समय की क्या मर्यादा रखी है?

विनोबा—मैंने तो फिलहाल एक घंटे* की मर्यादा रक्खी थी और वह अब खत्म हो चुकी है। इसलिए हम अब यहीं समाप्त करते हैं।

राजघाट, २३ नवम्बर १९५१

---

*इस सम्मेलन के लिए ३ से ४ बजे तक एक घंटे का समय रक्खा गया था।